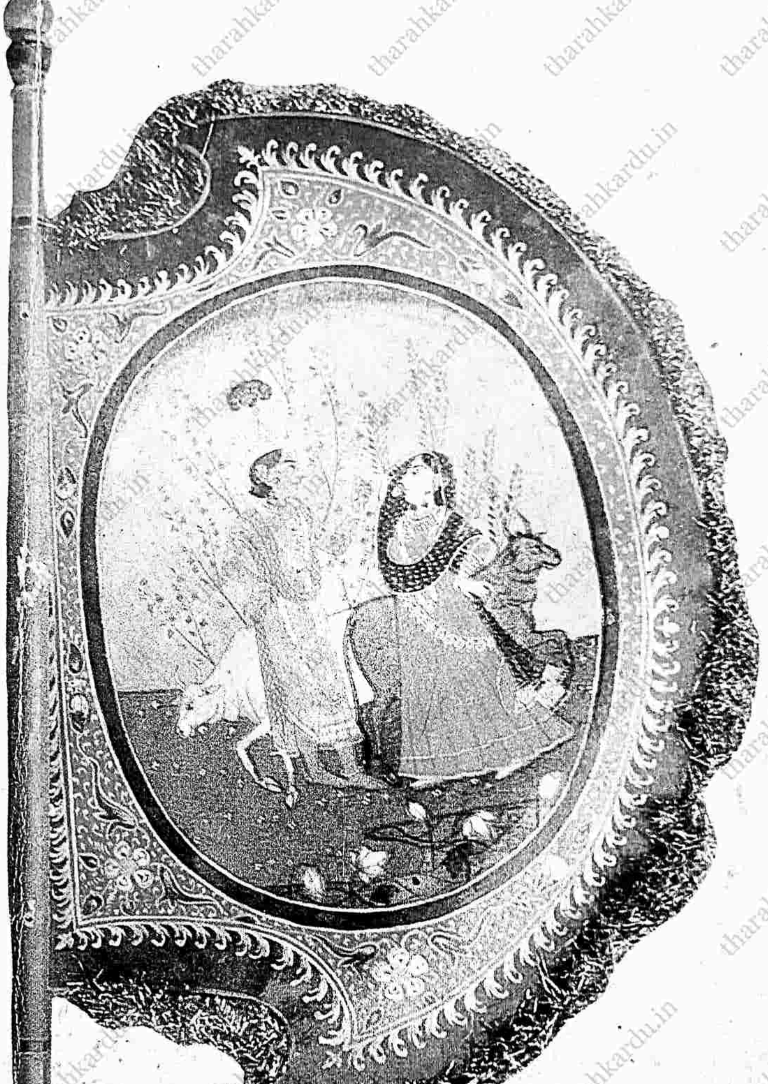

विपाशा

हिमाचल प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग की द्वैमासिक पत्रिका

tharahkardu.in

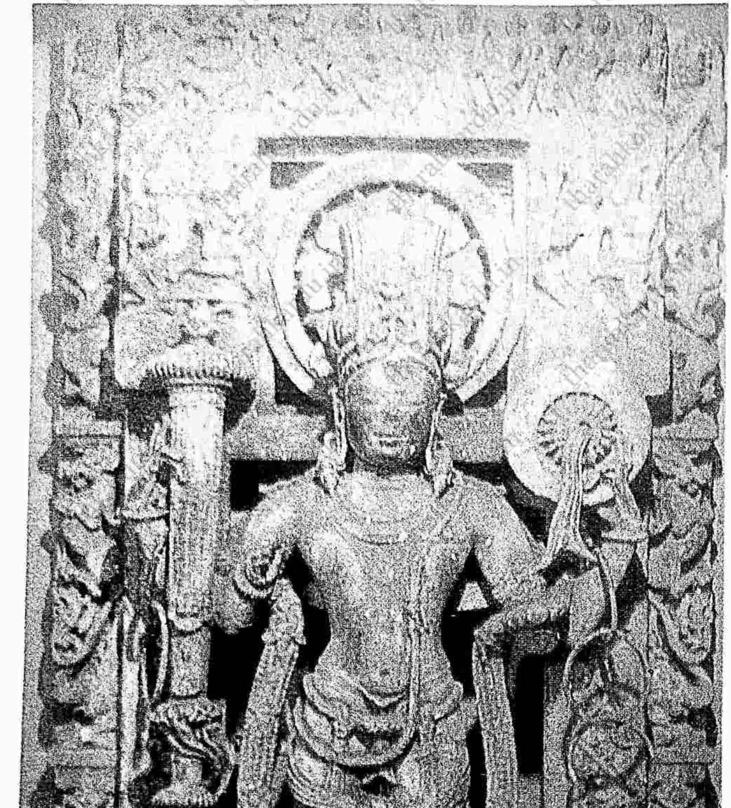

मुखपृष्ठ: पंखे पर पहाड़ी चित्रकला में राधा-कृष्ण

ऊपर का चित्र: पाषाण मूर्ति (13वीं शती) बलग (जिला शिमला)

पारदर्शी: हाकम शर्मा

tharahkardu.in

विपाशा

साहित्य, संस्कृति एवं कला की द्वैमासिकी
वर्ष - 6, अंक - 31, मार्च - अप्रैल, 1990

मुख्य संपादक
सी०आर०बी०ललित
निदेशक, भाषा एवं संस्कृति, हि० प्र०

संपादक
तुलसी रमण

संपर्क : संपादक-विपाशा, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि० प्र०
त्रिशूल, शिमला-171003 दूरभाष : 3669, 6846, 4614

वार्षिक शुल्क : दस रुपये, एक प्रति : दो रुपये

क्रम

3 पाठकीय
6 संपादकीय

निधन : अमृतलाल नागर

7 अपनी नजर में : **अमृतलाल नागर**
11 अमृतलाल नागर की नज़र में **चेखव**
13 शिक्षा (कहानी) : **एंटन चेखव** : अनुवाद : **अमृतलाल नागर**
19 अप्प दीपो भव : नागर : **भारतेंदु मिश्र**

पाहुन

21 **अज्ञेय** की कविताएँ

लेख

24 जयशंकर प्रसाद के नाटक : **गंगाप्रसाद विमल**

देशांतर

29 एक थके आदमी का यूटोपिया (स्पेनी कहानी) : **जार्ज लुई बोर्खेज**
34 आदम पुत्र को क्रूसदण्ड (चीनी कविता) : **लु शुन**

भाषांतर

38 मुग्धा-विमुग्धा (मैथिली कहानी) : **राजकमल चौधरी**
45 मिसरी (मराठी कहानी) : **सीताराम पारपिल्लेवार**
57 हौलदार (हाशमी संस्मरण) : **प्रभात उप्रेती**
60 किताबें (कविता) : **सफदर हाशमी**

कहानी

61 विष-वृक्ष : **बद्रीसिंह भाटिया**
71 सेवा-निवृत्त : **प्रकाशचंद धीमान**

कविता

77 दो कविताएँ : **श्रीनिवास श्रीकांत**
83 दो कविताएँ : **सतीशधर**
85 चार कविताएँ : **श्रीवत्स**
88 दो कविताएँ : **मधुकर भारती**

समीक्षा

90 यह जो हरा है—एक ही सूत से बुना है : **अवधेश कुमार**

कला

93 कांगड़ा कलम के चितेरे : **ओ० पी० टॉक** : **डॉ० प्रत्यूष गुलेरी**
96 हमीरहठ चित्र-सीरीज़ कथा

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, इनमें सम्पादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

पाठकीय

सविनय निवेदन है

सुन्दर लोहिया, मंडी हि० प्र०

मेरे आलेख 'हिमाचल की हिन्दी कहानी' पर जिन पाठक-समीक्षकों की प्रतिक्रियाएं छपी हैं, उनमें सर्वश्री केशव चन्द्र, ऋषि भारद्वाज और बद्रीसिंह भाटिया की प्रतिक्रियाएं महत्वपूर्ण हैं। इन तीनों पाठक-समीक्षकों ने अपनी बात संतुलित, तर्क संगत और मनोमालिन्य से बच कर कही हैं। ये प्रतिक्रियाएं लेखकीय ईमानदारी और साहित्यिक गरिमा अनुकूल हैं। अतः इनके प्रति अपने आपको उत्तरदायी पाता हूं।

इन तीनों लेखकों ने अपनी प्रतिक्रियाओं में जो मुद्दे उठाए हैं, उनमें कुछ ऐसे हैं जो तीनों में सामान्य हैं और कुछ अलग-अलग हैं। पहले मैं उस मुद्दे पर आता हूं जो तीनों लेखकों ने उठाया है। इनके अनुसार मैं गुलेरी और यशपाल को हिमाचली कहानीकार नहीं मानता हूं। मेरी इस बात पर कई तरह की चर्चाएं की गईं और बात को संदर्भच्युत करके उसके मनोगत अर्थ निकाले गए। मेरी यह मान्यता है कि ये हिन्दी के दो महान कथाकार, न हिमाचल में जन्मे, न इनकी शिक्षा-दीक्षा हिमाचल में हुई और न ही इनका कार्यक्षेत्र हिमाचल प्रदेश रहा है। इस बात से कैसे इन्कार किया जा सकता है? इसके अलावा यशपाल ने कुछ कहानियां और एक-दो उपन्यासों में हिमाचल के जन-जीवन का वर्णन किया है लेकिन गुलेरी की तीन कहानियों में एकाध कहानी हिमाचल के जन-जीवन पर आधारित है। उनकी अमर कहानी में तो पंजाब के जन-जीवन का चित्रण है। इन सब बातों के पीछे मेरा आग्रह इतना ही था कि हम निर्मल वर्मा और मोहन राकेश जैसे कथाकारों को भी हिमाचली कथाकार मान लें। क्योंकि इन दो कथाकारों ने भी हिमाचली परिवेश पर रचनाएं लिखी हैं। मेरा आग्रह गुलेरी और यशपाल को हिमाचली कहानीकारों की सूची से निकालने की अपेक्षा उस सूची में राकेश और निर्मल वर्मा को शामिल करके, विस्तृत बनाने का था। लेकिन मुझे गुलेरी और यशपाल विरोधी घोषित कर दिया गया।

अब सवाल है, ऐसा क्यों हुआ? ऐसा इसलिए हुआ कि कुछ लेखक इन महान विभूतियों के सहारे अपना साहित्यिक कद ऊंचा करने में मशगूल हो गए। गुलेरी जयन्ती के कुछ आयोजनों में मुझे भी शामिल होने का मौका मिला। वहां चर्चा का जो स्तर रहा, उससे मुझे लगा कि अपने आपको ऊंचा उठाने की कोशिश में लोग गुलेरी जी को बौना बनाते जा रहे हैं। मैं उन उद्‌भट्ट विद्वानों में से तो नहीं हूं जो यह घोषित करते हैं कि गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था' एक घटिया कहानी है। मैं इस रचना को आज भी हिन्दी कहानी में मील का पत्थर मानता हूं जिसे पीछे छोड़ना तो दूर, उस तक पहुंचना भी शेष है। मुझे आज भी यही

क्रम

3 पाठकीय
6 संपादकीय

निधन : अमृतलाल नागर

7 अपनी नजर में : **अमृतलाल नागर**
11 अमृतलाल नागर की नज़र में **चेखव**
13 शिक्षा (कहानी) : **एंटन चेखव** : अनुवाद : **अमृतलाल नागर**
19 अप्प दीपो भव : नागर : **भारतेंदु मिश्र**

पाहुन

21 **अज्ञेय** की कविताएँ

लेख

24 जयशंकर प्रसाद के नाटक : **गंगाप्रसाद विमल**

देशांतर

29 एक थके आदमी का यूटोपिया (स्पेनी कहानी) : **जार्ज लुई बोर्खेज**
34 आदम पुत्र को क्रूसदण्ड (चीनी कविता) : **लु शुन**

भाषांतर

38 मुग्धा-विमुग्धा (मैथिली कहानी) : **राजकमल चौधरी**
45 मिसरी (मराठी कहानी) : **सीताराम पारपिल्लेवार**
57 हौलदार (हाशमी संस्मरण) : **प्रभात उप्रेती**
60 किताबें (कविता) : **सफदर हाशमी**

कहानी

61 विष-वृक्ष : **बद्रीसिंह भाटिया**
71 सेवा-निवृत्त : **प्रकाशचंद धीमान**

कविता

77 दो कविताएँ : **श्रीनिवास श्रीकांत**
83 दो कविताएँ : **सतीशधर**
85 चार कविताएँ : **श्रीवत्स**
88 दो कविताएँ : **मधुकर भारती**

समीक्षा

90 यह जो हरा है—एक ही सूत से बुना है : **अवधेश कुमार**

कला

93 कांगड़ा कलम के चितेरे : ओ० पी० टॉक : **डॉ० प्रत्यूष गुलेरी**
96 हमीरहठ चित्र-सीरीज़ कथा

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, इनमें सम्पादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

पाठकीय

सविनय निवेदन है

सुन्दर लोहिया, मंडी हि० प्र०

मेरे आलेख 'हिमाचल की हिन्दी कहानी' पर जिन पाठक-समीक्षकों की प्रतिक्रियाएं छपी हैं, उनमें सर्वश्री केशव चन्द्र, ऋषि भारद्वाज और बद्रीसिंह भाटिया की प्रतिक्रियाएं महत्वपूर्ण हैं। इन तीनों पाठक-समीक्षकों ने अपनी बात संतुलित, तर्क संगत और मनोमालिन्य से बच कर कही हैं। ये प्रतिक्रियाएं लेखकीय ईमानदारी और साहित्यिक गरिमा अनुकूल हैं। अतः इनके प्रति अपने आपको उत्तरदायी पाता हूं।

इन तीनों लेखकों ने अपनी प्रतिक्रियाओं में जो मुद्दे उठाए हैं, उनमें कुछ ऐसे हैं जो तीनों में सामान्य हैं और कुछ अलग-अलग हैं। पहले मैं उस मुद्दे पर आता हूं जो तीनों लेखकों ने उठाया है। इनके अनुसार मैं गुलेरी और यशपाल को हिमाचली कहानीकार नहीं मानता हूं। मेरी इस बात पर कई तरह की चर्चाएं की गईं और बात को संदर्भच्युत करके उसके मनोगत अर्थ निकाले गए। मेरी यह मान्यता है कि ये हिन्दी के दो महान कथाकार, न हिमाचल में जन्मे, न इनकी शिक्षा-दीक्षा हिमाचल में हुई और न ही इनका कार्यक्षेत्र हिमाचल प्रदेश रहा है। इस बात से कैसे इन्कार किया जा सकता है? इसके अलावा यशपाल ने कुछ कहानियां और एक-दो उपन्यासों में हिमाचल के जन-जीवन का वर्णन किया है लेकिन गुलेरी की तीन कहानियों में एकाध कहानी हिमाचल के जन-जीवन पर आधारित है। उनकी अमर कहानी में तो पंजाब के जन-जीवन का चित्रण है। इन सब बातों के पीछे मेरा आग्रह इतना ही था कि हम निर्मल वर्मा और मोहन राकेश जैसे कथाकारों को भी हिमाचली कथाकार मान लें। क्योंकि इन दो कथाकारों ने भी हिमाचली परिवेश पर रचनाएं लिखी हैं। मेरा आग्रह गुलेरी और यशपाल को हिमाचली कहानीकारों की सूची से निकालने की अपेक्षा उस सूची में राकेश और निर्मल वर्मा को शामिल करके, विस्तृत बनाने का था। लेकिन मुझे गुलेरी और यशपाल विरोधी घोषित कर दिया गया।

अब सवाल है, ऐसा क्यों हुआ? ऐसा इसलिए हुआ कि कुछ लेखक इन महान विभूतियों के सहारे अपना साहित्यिक कद ऊंचा करने में मशगूल हो गए। गुलेरी जयन्ती के कुछ आयोजनों में मुझे भी शामिल होने का मौका मिला। वहां चर्चा का जो स्तर रहा, उससे मुझे लगा कि अपने आपको ऊंचा उठाने की कोशिश में लोग गुलेरी जी को बौना बनाते जा रहे हैं। मैं उन उद्भट्ट विद्वानों में से तो नहीं हूं जो यह घोषित करते हैं कि गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था' एक घटिया कहानी है। मैं इस रचना को आज भी हिन्दी कहानी में मील का पत्थर मानता हूं जिसे पीछे छोड़ना तो दूर, उस तक पहुंचना भी शेष है। मुझे आज भी यही

लगता है कि गुलेरी जी को हिन्दी कहानी के विस्तृत क्षेत्र से निकाल कर हिमाचल की हिन्दी कहानी के साथ जोड़ने से उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि नहीं हुई, हमने अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने का दुस्साहस अवश्य किया है।

इससे भी बड़ा अन्याय यशपाल के साथ किया गया। जिन लोगों ने यशपाल को लेकर हिमाचल में साहित्यिक आंदोलन शुरू किया, उन लोगों ने यह बार-बार कहा कि वे किसी विचारधारा के लेखक नहीं थे। वे तो विशुद्ध मानवतावादी लेखक थे। अब बताइए क्या यशपाल के बारे में ऐसा कहा जा सकता है? उनका पूरा लेखन एक विचारधारा के समर्थन में लिखा गया है। उनका सारा जीवन एक विचारधारा के प्रतिपादन में लग गया। लेकिन हिमाचल प्रदेश के यशपाल-आयोजकों को वे विशुद्ध मानवतावादी लेखक लगते हैं। यशपाल का इससे बड़ा अवमूल्यन और क्या हो सकता है?

अतः जब मैं इन दो कथाकारों को हिमाचल की हिन्दी कहानी से बाहर रखता हूं तो किसी प्रकार की अश्रद्धा से प्रेरित होकर नहीं, अपितु अगाध श्रद्धा से वशीभूत होकर ही करता हूं।

दूसरी सामान्य बात कालविभाजन को लेकर है। डा० सुशीलकुमार 'फुल्ल' ने अपनी पुस्तक 'हिमाचल के हिन्दी साहित्य का इतिहास' में जो काल विभाजन दिया है, उससे मेरा मत-भेद है। वे सन् 1911 से 1938 तक गुलेरी काल मानते हैं और 1939 से 1958 तक यशपाल काल। यह काल विभाजन और नामकरण मुझे तर्कहीन लगे। क्योंकि इस अवधि तक हिमाचल में हिन्दी कहानी का स्वरूप निश्चित नहीं हो पाया था। जो लोग हिमाचल में उस समय लिख भी रहे थे, वे कहानी की मुख्यधारा से कट कर लिख रहे थे। सन् 1958 के आस-पास हिमाचल में ऐसी कहानियां लिखी जाने लगीं जो मुख्यधारा में समाने की क्षमता रखती थीं। इसी समय में 'बर्फ़ के हीरे' कहानी संग्रह भी सामने आया। जिसमें हिमाचली कहानीकारों की कहानियों का सत्येन्द्र शर्मा ने सम्पादन और संकलन किया था। इस कथा संग्रह को ध्यान में रखते हुए ही मैंने इस काल का नाम 'अंकुरण काल' रखा। क्योंकि हिमाचल की हिन्दी कहानी के बीज अंकुरित होकर प्रस्फुटित हो रहे थे। इस काल को डा०'फुल्ल' प्रयोगवादी काल कहते हैं, जिससे मैं फिर सह-मत नहीं हूं। यह ठीक है कि हिन्दी कहानी में कविता की तरह प्रयोगवाद का बोलबाला तो हुआ लेकिन हिमाचल में प्रयोगवादी कहानियां इस काल में नहीं के बराबर लिखी गईं। प्रयोगवादी कहानियों में कहानी के ढांचे को जोड़ने की जो कोशिश की गई थी, वह इस प्रदेश के किसी कहानीकार में दिखाई नहीं देती। हां, नई कहानी के आंदोलन में कथानक की वापसी के साथ-साथ शिल्प की जो नई अदाएं आयीं उनका प्रभाव हिमाचल की कहानी पर ज़रूर पड़ा। इस-लिए प्रयोगवाद काल नाम भी मुझे सार्थक और तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता। मैंने 1959 से 1970 के काल को पल्लवन काल इसलिए माना कि इस दौरान 'बर्फ़ के हीरे' के रूप में जो बीज अंकुरित हुए थे, उन पर कोंपलें आने लगी। नये कहानीकार सामने आए। कई कथासंग्रह प्रकाशित हुए। कुछ कहानीकार चर्चित हुए। इसलिए मैंने इस काल को पल्लवन काल कहा। ऐसा कोई महत्वपूर्ण कथाकार नज़र नहीं आता जिसके नाम पर काल का नामकरण किया जा सके, इसलिए कहानी के अंकुरित होने और पल्लवित होने की स्थितियों को ध्यान में रखते हुए मैंने नये नाम सुझाए हैं।

इसके अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण मुद्दा है, जिस पर अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना

मैं ज़रूरी समझता हूं। एक शिकायत यह भी है कि मेरे आलेख में बहुत सारे कथाकारों के नाम छूट गए हैं। आलेख के अंत में दिये गए मेरे बयान को भी स्वीकार नहीं किया गया। मैं यह मानता हूं कि रचनाकार को समीक्षक का मुहताज नहीं होना चाहिए। यह उसकी स्वतंत्रता है। लेकिन समीक्षक की भी कुछ स्वतंत्रताएं हैं। वह किसे महत्वपूर्ण मानता है, उसके पक्ष में तर्क सहित लिखने की उसकी जिम्मेवारी ही नहीं स्वतंत्रता भी है। वास्तव में समीक्षक की जिम्मेदारी ही उसकी स्वतंत्रता है। अपनी स्वतंत्रता के उपयोग में वह निरंकुश नहीं हो सकता, रचनाकार हो सकता है। लेकिन रचनाकार इस बात की स्वतंत्रता नहीं ले सकता कि जो उसने लिखा है, समीक्षक को वह पढ़ना ही पड़ेगा। समीक्षक अपने पठन का चुनाव कर सकता है। राष्ट्रीय धारा से जुड़ा हुआ लेखक यदि छूट जाए तो क्षम्य नहीं, लेकिन व्यक्तिगत तौर पर प्रकाशित संग्रह और लघुपत्रिकाओं या दैनिक समाचार पत्रों के साहित्यिक संस्करणों में प्रकाशित लेखन को भी पढ़ना ज़रूरी हो जाए तो समीक्षक का कार्य दुस्साध्य हो जाएगा। इतना ध्यान ज़रूर रखिए।

हिमाचल के संदर्भ में मेरा पुनः सविनय निवेदन है कि अकादमी के सहयोग से प्रकाशित हर रचना को पढ़ना असंभव है। लेकिन मैं यह भी मानता हूं कि कुछ लेखक ऐसे भी छूट गए जो राष्ट्रीय धारा से जुड़ी पत्रिकाओं में छपे हैं। उनके प्रति मेरा नम्र निवेदन है कि इस आलेख के लिखे जाने और छपने के बीच लगभग एक वर्ष का समय लग गया है। इस बीच अवश्य ही कुछ महत्वपूर्ण रचनाएं मुख्य धारा से जुड़ी पत्रिकाओं में छपीं या मैंने वे संकलन पढ़े जिन पर आलोचना लिखना चाहता था, लेकिन इस सबके लिए वक्त हाथ से निकल चुका था।

एक और महत्वपूर्ण शिकायत यह है कि मैंने हिमाचल की हिन्दी कहानी को हिन्दी कहानी की मुख्यधारा के संदर्भ में विवेचित नहीं किया। शिकायत सही है। लेकिन मैं यह मानता हूं कि हिमाचल के रचनाकार को समीक्षात्मक सहानुभूति की ज़रूरत है। समीक्षक का काम उभरती हुई कोंपलों को तोड़ना नहीं, उन्हें सिंचित करना है, कम से कम इस प्रदेश में। यह ठीक है कि मैंने हिमाचल की हिन्दी कहानी की दशा का वर्णन किया है उसकी दिशा का नहीं।

अंत में मैं अपने कथाकारों से पुनः निवेदन कर दूं कि मेरा आलेख हिमाचल की हिन्दी कहानी पर कोई अंतिम फतवा नहीं है। मैं उन सभी लेखक बन्धुओं का आभारी हूं जिन्होंने प्रतिक्रियाएं लिखकर, इस बहस को सही और मुद्दों की ओर मोड़कर सार्थक बहस का अवसर दिया है।

सत्यदेव शर्मा, अम्बाला

विपाशा के अंक 29 में महत्वपूर्ण सामग्री है। श्री निर्मल वर्मा का लेख, जितेन्द्र कुमार व अवधेश कुमार की कविताएं, और श्रीनिवास जोशी व राजीव ई० सिंह की कहानियां, यह सब बेहतर है। आवरण पर केवल एक मुखौटा बड़े आकार में जाता तो अच्छा लगता। फिर भी आपके यहां शालीनता बनी रहती है।

प्रमिला सिंह, दिल्ली

विपाशा के अंक 29 में 'पाहुन' स्तम्भ के अन्तर्गत अज्ञेय जी का यात्रा संस्मरण दिया गया है। हिमाचल की यात्रा अनेक साहित्यकारों ने की है और वहां के परिवेश से प्रभावित होकर लिखा भी है। इस तरह के साहित्य को क्रमशः पाठको तक पहुंचाने की दृष्टि से यह स्तम्भ सार्थक जान पड़ता है। मोहन राकेश, अश्क, निर्मल वर्मा, कृष्णा सोबती आदि की रचनाएं भी हिमाचल से जुड़ी मिलेंगी।

संपादकीय

उड़ गया मानस का हंस

अमृतलाल नागर की रचनाएं जनसाधारण और पंडित दोनों को अह्लाद देती हैं। सहज, प्रवहमान, रससिद्ध उनका इतिवृत्त चलता है। उनके चरित्र मूर्तिमत होते जाते हैं। लगता है आप उनसे सीधे समान स्तर पर साक्षात्कार कर रहे हैं। वे उसी हाड़-मांस के हैं जैसे आप हैं। उनमें वही सब अच्छाइयां-बुराइयां, कमज़ोरियां और संभावनाएं हैं, जैसी आप में हैं। वे जैनुन्द्र कुमार के पात्रों की तरह अमूर्त और वायवी नहीं लगते। न अज्ञेय के पात्रों की तरह अबूझ। यह सरलता, सहजता अमृतलाल ने कहां से पाई? वे कहते हैं कि शरच्चंद्र ने उन्हें आशीर्वाद दिया था—जीवन को जैसे देखो, लिखो। प्रमाणिकता से लिखो। इसीलिए कभी वे अपनी रचनाओं की योजना बनाकर नहीं लिखते थे। **—प्रभाकर माचवे**

नागर जी की विशेषता थी, उनकी कथा कहने की अद्भुत क्षमता उतने ही प्रभावशाली थे वे घटनाक्रम का ताना-बाना बुनने में और इस सब के बीच में चरित्रों को उभारना उन्हें खूब आता था। यही उनकी सामर्थ्य थी, यही उनकी सीमा। उनके तेरह उपन्यासों में जो विशेष प्रसिद्ध हुए, वे हैं 'बूंद और समुद्र' (1965) अमृत और विष (1966) शतरज के मोहरे (1968) और मानस का हंस (1973) नागर जी की मृत्यु नहीं हुई है मात्र देह का अवसान हुआ है। देह उन्हें छोड़ गई, वे विदेह हो गए हैं। अब वे हम से जुदा नहीं होंगे। जीवित रहेंगे हमारी स्मृति में, कालजयी कृतियों में, वास्तविक नागर जी तो वही हैं। **—विष्णु प्रभाकर**

महादेवी, अज्ञेय, जैनेन्द्र, और अब नागर जी। हिन्दी ने बहुत कुछ खोया, मगर कालजयी कृतियों की दाय भी हमको मिली।

दिवंगत आत्मा को शत्-शत् प्रणाम!

इस अंक में देशांतर तथा भाषांतर स्तम्भों के अन्तर्गत क्रमशः बोर्खेज़ (स्पेनी) तथा सीताराम पार पिल्लेवार (मराठी) की दो महत्वपूर्ण कहानियां दी जा रही हैं। 'पाहुन' में अज्ञेय की उन कविताओं को संकलित किया गया है जो उन्होंने हिमाचल प्रदेश के विभिन्न भागों का भ्रमण करते हुए लिखी थीं। इसके अतिरिक्त कविताएं तथा समीक्षात्मक लेख जैसी नियमित सामग्री भी सम्मिलित है।

अपनी नज़र में...

□ अमृतलाल नागर

बचपन का ज़माना। एक था मैं और एक था मेरा अकेलापन। मैं तो नासमझी के आकाश में समझ की पतंग उड़ाना सीख रहा था और मेरा अकेलापन तरह-तरह से अपने सूने खानों को भरकर अपना जी बहला रहा था। मेरे पितामह बैंक के मैनेजर थे। कोठी के पिछले हिस्से में बैंक था आगे वाले भाग में हमारा निवास। बड़ों से भरा घर, दिन-भर, आने-जाने वाले लोग भी बड़ी उम्रों के, कोठी के सामने की चलती सड़क और कोठी के निचले भाग में बनी सब्जी बेचने वाले कबड़ियों की दूकानें, कबड़ियों की आपसी लड़ाइयों का सिलसिला तो चलता ही रहता था, सवेरे ग्राहकों के साथ उनकी कहा-सुनी भी मेरे अकेलेपन को अक्सर ऐसी लुभाती थी कि मैं उसके बहकावे में आकर अपनी आरम्भिक शिक्षा का होमवर्क (जिसमें रटाई ही विशेष होती थी) छोड़कर छज्जे पर जा खड़ा होता, जिसकी वजह से अकसर कान भी खींचे जाते। मेरा अकेलापन एक ऐसा बैंक बन गया था जिसमें तरह-तरह की चाल-ढाल, बोलचाल के लहजे, मुहावरे, गालियां, असंख्य दृश्य और अनुबूझी-सी अनुभूतियां, चेहरे और आवाजें जमा होती ही रहती थीं। नित्य रात को दादी से राजा-रानियों की कहानियां तो सौभाग्य से कई बरसों तक सुनीं, लेकिन कल्पना-शक्ति को बढ़ावा देने का श्रेय ठाकुर चौकीदार से सुनी हुई गदर की कहानियों को दूंगा, जिनकी लड़ाइयों की कल्पनाएं करते-करते इतना तन्मय हो जाता था कि प्रायः रातों की नींद ही गायब हो जाती थी।

बैंक की कोठी के सामने सड़क पार बने विशाल कंपनी बाग में रात के समय सियार बहुत बोलते थे। उनकी 'हुक्का हुआ' के सम्बन्ध में बूढ़े नौकर मातादीन से सुना कि वहां पहले चांदी बाज़ार था, इस्माइल खां का बाज़ार था, लाल मण्डी की घनी आबादी थी। गदर में अंग्रेजों ने सबके घर खुदवा दिये। जो मरे उनके परेत हुंकारते हैं। यह सियारों की हुक्का हुआ नहीं वरन् शहीदों की हुंकारें हैं—इस बात ने मेरी कल्पना-शक्ति और अकेलेपन को बहुत भरा। पहले

मेरा अकेलापन अपने मन बहलाव के लिए देखी-सुनी बातों या लोगों की चाल-ढाल की नकलें ही कर पाता था, लेकिन बाद में गदर की काल्पनिक मार-काट और वीरता भरे कारनामों की नकलें भी करने लगा।

मेरे पिता स्व० राजारामजी और उनके मित्रगण लखनऊ में शौकिया हिन्दी रंगमंच के नायकों में थे। उनके नाटकों की प्रेरणा से इन नकलों में अकबक डायलॉग भी जुड़ने लगे। इसके बाद मैं जब प्राइमरी स्कूल में जाने लायक हुआ और घर में आने वाली 'सरस्वती' और 'गृहलक्ष्मी' पत्रिकाएं भी पढ़ने लगा, तब मेरा अकेलापन तो संन्यास लेकर और अपने अनुभवों का गुप्त खजाना मेरे को विरासत में देकर दूर हुआ। मेरी अनाप और सनाप पढ़ाई ने कल्पना-पंछी को विचारों के अनाप-सनाप पंख लगाने की चेष्टाएं शुरू कर दीं। इस तरह मेरा रचनाकार भीतर-दर-भीतर तहों में ढलते-ढलते उस अवसर की तलाश में गूंगे जैसी चुप्पी साधे रहा जब उसे बेबस हो खुद-ब-खुद बंद कली की तरह फूट कर खिलना पड़ता था। यह कली चिटकी लखनऊ में साइमन कमीशन के विरोध में निकले उस विशाल जुलूस में, जिसके अगुवा उस समय के 'युवा हृदय सम्राट' जवाहरलाल नेहरू और पण्डित गोविन्द बल्लभ पंत थे। रचना के बिरवे में पहली कली चिटकी तो तुकबंदी के रूप में ही। और यह तुकों और मात्राओं की कवायद साल-छह महीने आगे तक चलती भी रही, परन्तु जल्द ही मेरा कवि कहानीकार बन कर अपना असली रूप पा गया। इसमें मेरी कल्पना-शक्ति और रचनात्मक वृत्ति को दौड़ना अधिक सुहाया। इस तरह मैंने अपने कहानीकार को जाना। कहानियां पढ़ने की ललक भी बढ़ी। तब तक हिन्दी और बंगला तथा अंग्रेजी कहानियों के हिन्दी अनुवाद ही पढ़े थे, मगर अब अंग्रेजी में भी पढ़ना शुरू किया। शरद बाबू और प्रेमचन्द जी के दो वाक्य मेरे लिए मंत्र बन गए। शरद बाबू ने कहा, 'जो लिखो, वह अनुभव से लिखो।' प्रेमचन्द जी ने मेरी शुरू की कहानियां देखकर लिखा कि मैं तुमसे रियलिस्टिक कहानियां चाहता हूं। अनुभवों को पहचानने और रियलिज्म यानी यथार्थ की समझ पाने के मनोसंघर्ष में मेरी बेतहाशा दौड़ती हुई नौजवान कलम ने लम्बी चुप्पी साध ली। अचानक पढ़ते समय तोल्सतोय (जिन्हें अंग्रेज़ी जमाने में सब टालसटाय कहते थे) का एक वाक्य जो शायद इस प्रकार था कि—'पहले यह मानना बन्द कर दो कि कला महज़ आनन्द देने का साधन है। इसे इंसानी जीवन की एक शर्त मानो।' इस बात ने मेरे 18-20 वर्षों से उमड़ते-घुमड़ते नाबालिग कहानीकार को सहसा बालिग बना दिया। तोल्सतोय मानते थे कि कला एक इंसानी क्रिया है। एक जागरूक कलाकार अपने जीवन की अनुभूतियों को दूसरों तक पहुंचाता है और अपने ही जैसा उसे भी प्रभावित करता है। कहानी, उपन्यास या नाट्य लेखन की कलाएं पंडिताऊ शास्त्र नहीं, भले ही इन ललित कलाओं पर शास्त्र लिखा जा सकता हो। इस तरह मैंने यह समझ पाई कि कहानी को धनुष बनाकर उससे अपनी बात का तीर इस तरह चलाना चाहिए कि दिल की बात दिल में जा चुभे।

एक साधारण-सी बात भी कभी किसी रचनाकार की संवेदना के झीने से झीने परदे तक हिला जाती है। वह उन्हें लिखने बैठ जाता है। उन अनुभूतियों को जहां तक संभव हो उसी ताज़गी के साथ अंकित कर देना मेरी दृष्टि में कहानीकार का खास काम है। यही रचनाकार की वह मानवीय प्रक्रिया है जो लेखक से पाठक के दिलों को जोड़ती है। मैं छोटी कहानी लिखूं या बड़ी अथवा उपन्यास, कहानी के ढांचे को मुखयत: उसके चरित्रों के नातों से आगे बढ़ाता हूं। पात्र आपसी रिश्तों के कारण ही कहानी की घटनाएं बनाते हैं, घटनाएं बाहर की भी होती हैं

और मन के भीतर की भी। चरित्र-चित्रण के माध्यम से कहानी को आगे बढ़ाता हुआ इन घटनानुभूतियों के क्रम को मैं स्वयं चरित्रों के मनोनुकूल होकर ही आगे बढ़ाता हूं, अपनी कल्पनात्मक सनकों को चरित्रों पर आरोपित नहीं करता। यह आरोपण करने की वृत्ति लेखक की खोखली अहंमन्यता ही सिद्ध होती है जो उसे अपने कलात्मक सौन्दर्य की थाह लेने से रोक देती है। व्यक्ति का खोखला अहं स्वयं अपने ही सृजनात्मक अहं का शत्रु बन जाता है; जैसे मैं अपनी रचना प्रक्रिया में पाठकों को नहीं भुलाता वैसे ही स्वयं अपने को भी सही ढंग से बराबर याद रखने की कोशिश करता हूं क्योंकि रचना केवल पाठक की अनुभूतियों को ही प्रभावित नहीं करती, वैसे उसका पहला प्रभाव स्वयं कहानी लेखक पर पड़ता है। इसलिए मैंने यह क्रमशः जाना कि कहानी रचना एक ऐसी मानवीय आवश्यकता है जो लेखक को पाठक से अलग नहीं रखती। मेरी दृष्टि में यह स्वान्तः सुखाय लेखन हो जाता है, क्योंकि इस रचना प्रक्रिया से मेरा रचनाकार विश्वात्मा से मेरा योग कराता है, वह उत्तरोत्तक विराट और व्यापक बनता है। मेरी विनम्र मति के अनुसार किसी भी कला का यही उद्देश्य होना चाहिए। यह मेरी मान्यता कहानियां रचते-रचते ही बनी।

सन् '36-37 के लगभग एक अफ़ीमची किस्सागो हफ्ते में दो बार मेरे यहां नियमित रूप से आते थे। वह और उनके पूर्वज पेशेवर किस्सागो थे। उर्दू न जानने की अपनी कमजोरी को मैं बूढ़े दोस्त नब्बू मियां की सहायता से दूर करने की कोशिश किया करता था। वह दिन के भरे उजाले में भी यह शेर पढ़कर ही अपना किस्सा आरंभ करते कि—"जागता है खुदा और सोता है आलम"···उस कविता में वह यह भी कह देते थे कि सुनी हुई कह रहा हूं सच का गुमान नहीं है, मेरे शब्द भी मीठे नहीं हैं फिर भी किस्सा सदा सच्चा और मीठा ही होता है। मैंने उनसे 'अलिफलैला की कहानियां' सुनीं, बाद में 'तिलिस्म-स्होश रुबा' सरशार की 'फिसानए आजाद', 'सैरे कोहसार', 'किस्सा गुल-बकावली', 'जहरे इश्क' और भी बहुत कुछ सुना। किस्सागोई के फन में सुनने वाले की रुचि का खयाल बहुत किया जाता है। लेकिन यह रुचि केवल रईसों और नवाबों की रुचियां ही हुआ करती थीं, क्योंकि किस्से सुनाने की नौकरी उन्हीं से मिलती थी। लेकिन मेरा मालिक आम पाठक था जिसमें अमीर भी थे और गरीब भी, इसलिए किस्सागोई की रुचि को मैंने जनरुचि और जनहित का हिस्सा बनाकर ही पेश करने की कोशिश की है। प्रेमचन्द ने पुराने किस्सागोई के फन को आधुनिकता का जामा पहनाकर शायद यही काम किया और सफलता भी पाई। चेखोव की कहानियों और ओ॰हेनरी की कुछ कहानियों ने भी मुझे बहुत प्रभावित किया और मैंने यह सीखा कि कला का विकास उसके अपने मूलभूत गुण और सौन्दर्य की दृष्टि से होना चाहिए, पर यह सब बातें मिलकर जब तक मानव के जीवन के दुख-सुख से नहीं जुड़तीं तब तक पत्थर की मूर्तियों की तरह सुन्दर लग कर भी निष्प्राण ही रहती हैं। कहानी में पात्र और उसके परिवेश का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध मेरे मन में इसी प्रकार उद्घाटित हुआ और इसे मैंने आज तक न छोड़ा है और न घटाया ही है। व्यक्ति हो या देशकाल, अपने परिवेश से अलग रख कर उन्हें कदापि नहीं देखा जा सकता। व्यक्ति कितना ही व्यक्तिवादी क्यों न हो, उसकी भावनाओं, चिंतन और कर्मों पर समाज की छाप पड़े बिना रह ही नहीं सकती।

सुप्रसिद्ध लेखक और मेरे आदरणीय अग्रज स्वर्गीय भगवतीचरण जी वर्मा अकसर निःसंकोच भाव से यह कहा करते थे कि मुझे कहानी या उपन्यास लिखने की प्रेरणा तभी मिलती है जब कहीं से पैसा मिलता है। उनकी ईमानदारी के प्रति आदर होने के बावजूद मुझे यह बात

कभी उचित नहीं लगी। लिखना सर्जक मन की अपनी मजबूरी होती है। मैंने अपनी मन:तंरगों से मजबूर होकर लिखा है और फिर उन्हें कहीं न कहीं छपवाकर पैसे कमाये हैं, साथ ही संपादकों के आग्रहवश यानी पैसे कमाई के लिए लोभ में आकर भी लिखा है। जब लेखन ही जीविका का साधन बना लिया तो यह करना ही पड़ेगा। लेकिन दोनों प्रकार की मन:स्थितियों में लिखने बैठकर वस्तुत: मैं अपने मन की प्रेरणा से ही प्रेरित हुआ हूं। यह सच है कि मैं या कोई भी रचनाधर्मी कलाकार अक्सर अपनी अभिव्यक्तियों को रूप देने में आलस्य करता है और उसे कोई न कोई लालच ही रचना करने के लिए मजबूर करता है। पैसा या आजीविका चूंकि एक बड़ा लालच है इसलिए उसकी मजबूरी को तो मान्यता देनी ही होगी, परन्तु इस मजबूरी के बावजूद उसकी रचनाधर्मिता की मजबूरी ही को मैं मुख्य मानता हूं। आजीविका और जीवन के प्रति उत्तरदायित्व इन दो बातों ने मेरी चिन्तन चक्की को खूब चला दिया। यह स्वीकार करते हुए भी अपनी उस अनवरत चिन्तन क्रिया को ही महत्व दूंगा, वह चिंतन क्रिया ही विविध विषयों की रचना प्रक्रिया के पीछे शक्ति बनकर समाई है। आज से 60-70 बरस पहले जमी-जमायी सरकारी नौकरी छोड़कर मुन्शी प्रेमचन्द ने स्वतंत्र रूप से अपनी चिन्तन क्रिया और तद्-विषयक रचना प्रक्रिया को निरन्तर जागरूकता देने के लिए स्वतंत्र लेखन कार्य आरम्भ किया था। इसमें तनिक भी शक नहीं कि अपनी हर कहानी या उपन्यास से उन्होंने थोड़े या बहुत पैसे ज़रूर कमाये। एक मनुष्य के नाते परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्व को स्वकर्म करते हुए ही निबाहा पर स्वर्गीय भगवती बाबू, स्व० यशपाल जी और मैं तीनों ही स्वतंत्र रचनाधर्मी रहे। अपने-अपने जीवनों के किसी न किसी समय को हमने बेहद तंगियों से गुज़ारा मगर जिस रचनाधर्मिता ने ही अपनी आस्था और हठ देकर हमें जिलाया उस धर्म का पूरी तरह अर्थ प्राप्ति के लोभ के अधीन होना मैं गले-गले गंगा में खड़े होकर भी हरगिज नहीं मानूंगा।

[राजपाल एंड संज से प्रकाशित 'एक दिल हजार अफसाने' की भूमिका से]

अमृतलाल नागर की नज़र में चेखव

रूसी-साहित्य के इतिहास में 19 वीं सदी के आखिरी पचास साल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस ज़माने में यथार्थवाद का बोलबाला रहा। तुर्गनेव, डोस्टावेस्की, टालसटाय, एंटन चेखव जैसे संसार-प्रसिद्ध रियलिस्टिक लेखकों की रचनाएं इसी अर्से में प्रकाशित हुईं। चेखव इस स्कूल का अन्तिम महान् लेखक है। 1904 में, उसकी मृत्यु के बाद, सिंबोलिस्ट स्कूल ने विजय पाई।

रूसी यथार्थवाद-स्कूल की कुछ विशेषताएं हैं, जो न्यूनाधिक मात्रा में इस ज़माने की हरेक रचनाओं में पाई जाती हैं—घटनाओं की बनिस्बत चरित्र-चित्रण पर अधिक ज़ोर देना, अलंकार और आडंबर-युक्त शैली की उपेक्षा, कथा-वस्तु की नींव में तात्कालिक रूसी-जीवन। एक बात और ध्यान देने योग्य है। सभी रचनाओं का एक खास उद्देश्य है—सामयिक राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं को हल करना।

सन् 1863 तक मैदान खाली होने लगा था। तुर्गनेव, डोस्टा वेस्की, टालसटाय जैसे स्रष्टाओं की लेखनी विश्राम लेने लगी थी। नये लेखकों में ऐसा कोई न था, जो इनका पासंग भी बैठे। ऐसे ही समय चेखव साहित्य-क्षेत्र में अवतरित हुआ। उसने कहानी-कला में कमाल हासिल किया। वह विश्व-कथा-साहित्य का एक युग-प्रवर्तक लेखक माना जाता है। रूसी-साहित्य पर उसका कितना प्रभाव है यह इसी बात से जाना जा सकता है कि इतिहास में यह ज़माना 'चेखावेस्की नेस्ट्रोनी ('चेखव-दिमाग़ का ज़माना') के नाम से प्रसिद्ध है। यह इसलिए नहीं कि चेखव इस ज़माने का सबसे महान् पुरुष है; बल्कि इसलिए कि चेखव ने अपनी कहानियों द्वारा इस ज़माने का चित्र उपस्थित किया है।

एंटन पेवोलिच चेखव बृहस्पतिवार के दिन, 17 जनवरी, 1860 में पैदा हुआ था। दक्षिणी-रूस में एज़ोव समुद्र-तट के निकट एक कस्बा है—जगनरोग। यही उसका जन्म-स्थान है। उसके मां-बाप साधारण से किसान थे। इसी वातावरण में उसका लालन-पोषण हुआ।

चेखव का व्यक्तिगत जीवन कोई विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। अपने अन्य साथियों की भांति उसने भी कितनी उम्मीदों के साथ डॉक्टरी पास की। जब उसने देखा कि डॉक्टरी की अपेक्षा कहानियां लिखने में ज्यादा पैसा मिलता है, तो वह इसी ओर झुक गया।

उसकी पहली रचनाएं चौदह वर्ष की उम्र में प्रकाशित हुई थीं। शुरू में वह अपना नाम देता था—एंटोशाचेखोन्टी। धीरे-धीरे उसकी लेखनी प्रौढ़ता प्राप्त करने लगी। सन् 1886 में उसकी पहली पुस्तक प्रकाशित हुई। इसी साल उसने मास्को के सुप्रसिद्ध समालोचक

ग्रीकोविच से परिचय प्राप्त किया। इसके बाद उसकी ख्याति दिन पर दिन बढ़ती गई। 1890 के बाद उसकी जितनी रचनाएं प्रकाशित हुईं, सभी बेजोड़ हैं। यह कहना बहुत कठिन है कि उनमें कौन ज्यादा अच्छी है।

चेखव के लिखने का ढंग वर्णनात्मक है। वह अपने पात्रों की भावनाओं का विश्लेषण नहीं करता; बल्कि इस तरह की परिस्थितियां उपस्थित कर देता है कि हम अलक्ष्य-रूप से उनसे सहानुभूति करने लगते हैं। इस दिशा में वह तुर्गनेव का अनुगामी कहा जा सकता है—डोस्टा-वेस्की अथवा टाल्सटाय का नहीं। लेकिन, उसकी पूंजी इसके सिवा कुछ और है। उसकी कहानियों में ग़ज़ब की समता (evenness) होती है। एक-एक शब्द चुने हुए, जिसमें कोई भी घटाया अथवा बढ़ाया नहीं जा सकता। अगर ऐसा किया जाय, तो कहानी का प्रभाव नष्ट हो जाएगा। इस तरह वह गद्य लिखने में तुर्गनेव से भी श्रेष्ठ है, जिसका नाम इस प्रकार का गद्य लिखने में सबसे पहले लिया जाता है।

चेखव की एक विशेषता और है। अपने अन्य सहयोगियों की भांति उसकी कहानियां चरित्र-प्रधान नहीं हैं। वह शायद चरित्र से पहले घटना को ढूंढ़ता था। इसी घटना के प्रकाश में उसके पात्र का सारा जीवन, उसकी मानसिक अवस्था आप-ही-आप दिखाई पड़ने लगती है। वह नखसिख की बारीकियों में अपने को नहीं उलझाता, जैसा कि यूरोपियन कहानी लेखकों का दस्तूर है। न वह कोई असाधारणता पैदा करता है, बस वह अपने चित्र की कुछ मोटी रेखाओं की ओर संकेत कर देता है, और आश्चर्य कि हम उसकी बारिकयों तक को समझने लगते हैं।

चेखव ने कई नाटक भी लिखे हैं, जिनमें 'शाहदाने का बाग' सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है। 1898 के बाद उसने कई बार यूरोप की यात्रा की। उसके जीवन-काल में ही उसकी कहानियों का इक्कीस भाषाओं में अनुवाद हुआ, और कुछ भाषाओं में तो कई-कई अनुवाद हुए। उसके दिल में मानव-जीवन को सुधारने-संवारने का बड़ा हौसला था। मास्को से कुछ दूर उसने कुछ ज़मीन मोल ली थी, जहां वह एक आदर्श ग्राम स्थापित करना चाहता था।

1904 में जर्मनी के बाडेन-वाइलर नामक नगर में उसका देहांत हुआ। शुरू जवानी में ही उसे खांसी की शिकायत थी। वह क्षय का पूर्व चिह्न था। इसी रोग ने उसे भरी जवानी में ले डाला।

('काला पुरोहित' का परिचय)

शिक्षा

□ एंटन चेखव

'कोई सज्जन तुमसे मिलना चाहते थे।...शायद किसी पुस्तक के विषय में तुमसे कुछ वार्तालाप करना था।...डाकिया आया था, तुम्हारे नाम के दो पत्र और समाचार-पत्र दे गया है—मैंने उन्हें तुम्हारी मेज़ पर रख दिया है।...और, मैं तुमसे एक बात कहूं, पेट्रोविच ?...देखो बुरा न मानना, तुम 'सिरोज़ा' की ओर बिलकुल भी नहीं देखते। उसके लक्षण नित्यप्रति बिगड़ते ही चले जा रहे हैं।...अभी कल ही,...हां...नहीं परसों मैंने उसे सिगरेट पीते हुए पकड़ा था। जब मैं उसे फटकारने लगी, तब, अपनी आदत के अनुसार वह कान पर हाथ रखकर चीखने लगा—इतनी ज़ोर से कि मेरा स्वर किसी को सुनाई ही न पड़े।'

आफ़िस से लौटकर वह मोज़े उतार रहा था। गृहस्थी के रंगमंच की नटी, उस छोटे-से पारिवारिक-संसार की संरक्षिका उसके सम्मुख दैनिक जीवन के अलबेले डोरे सुलझाने लगी; और डिस्ट्रिक्ट-कोर्ट का वह उच्च पदाधिकारी उसकी बात पर हंसकर कहने लगा—

सरोज़ा सिगरेट पीता है ?...हूं—कोमल अधरों में सिगरेट दबाये हुए...हां, मैं उसकी कल्पना तो कर सकता हूं।...उसकी आयु क्या होगी ?'

'सात वर्ष का है।...तुम इसे साधारण-सी बात समझ रहे हो, परंतु सच कहती हूं, इस अवस्था में धूम्रपान करना स्वास्थ्य के लिए विशेष हानिकारक है। बुरी आदत का...'

'हां, ठीक तो है।...परंतु उसे सिगरेट मिल कहां से गई ?'

'तुम्हारी मेज़ पर रक्खी रहती हैं।'

'मेरी मेज़ पर ! अच्छा उसे यहां भेजो।'

संरिक्षिका जब भीतर चली गई, वह आंखें बंद कर एक आराम-कुर्सी पर लेट गया। कल्पना के सुनहरे डोरे फैलाकर उसने देखा—एक चित्र की भांति, सिरोजा एक बहुत बड़ी सिगरेट, समझ लीजिए एक गज़ लंबी मुंह में दबाए हुए है, और धुएं की एक घनघोर काली घटा-सी उसके चतुर्दिक आच्छादित है। सिरोज़ा के धूम्रपान के इस काल्पनिक चित्र को अपने मस्तिष्क-मंदिर में सजाकर वह सहसा हंस पड़ा; परंतु जैसे उसे ध्यान आया—संरक्षिका उसकी इस असामयिक बुरी आदत से कितनी दुःखी है !—और फिर स्कूल में भी ऐसी बुरी आदत के दास छात्रों को कितनी हेय दृष्टि से देखा जाता है। उन्हें मारा-पीटा जाता है, स्कूल से निकाल दिया जाता है, और तब उनका मस्त जीवन अत्यंत घृणित और अक्षम्य वासनाओं के कुचक्र में पड़कर दो निःश्वास और एक आह-सा व्यथित हो जाता है।...वह अपने स्कूल-जीवन के संस्मरण बटोरने लगा—उसके प्रधानाध्यापक महोदय कितने सज्जन, विद्वान और वात्सल्यमय हृदय के

थे ! फिर भी, एक बार जब उन्होंने एक लड़के को सिगरेट पीते पकड़ पाया था···तब वे उस पर कितने क्रुद्ध हुए थे !—उसे स्कूल से निकाल दिया था; और फिर···और फिर···ओह ! वह अपने बच्चे का जीवन नष्ट होते हुए न देख सकेगा । उसे सुमार्ग पर लाना ही होगा ।

इन्हीं कुछ बातों को सोचते-सोचते वह थक गया । प्रायः दिन-भर में भी उसे कुछ-न-कुछ सोचना ही पड़ता था और उसके पश्चात्, आफ़िस घर में—यही सब कुछ । आज घरेलू वातावरण की यही एक समस्या उसके सामने उपस्थित थी ।···उसके बच्चे, सिरोजा का जीवन !

नौ बज रहे थे । ऊपर के कमरे से उसे किसी की पद-ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ रही थी—जैसे कोई पीड़ाक्लांत मनुष्य अनमना-सा हो, व्याकुलता के आघात से व्यथित-सा इधर-उधर टहल रहा हो ।···उसे फिर सुनाई पड़ने लगा—संरक्षिका सिरोजा से कुछ कह रही थी ।

'पापा आ गये ?'—लड़का कह रहा था,—'पापा आ···ग···ए ! पापा ! पापा !'

'मैं उससे क्या कहूं ?'—वह लेटे-लेटे सोचने लगा ।

और तब तक वह कुछ सोच भी न पाया था, कि सिरोजा उसके कमरे में आया ।

सिरोजा—सुकुमार, स्त्रियोचित सरलता का आभार अपने मुख-मंडल पर लादे,—वह दुबला-पतला सीधा-सा सात वर्ष का बालक ।

'प्रणाम करता हूं, पापा ।'—सरलता से सरल बालक ने उसे प्रणाम किया और कहा—'आपने मुझे बुलाया था ?'

इसी समय उसने उससे कहा—'बस अब मैं तुम्हें प्यार नहीं करता । मैं तुमसे अत्यंत क्रुद्ध हूं । बस अब तुम मेरे बेटे नहीं हो ।···मैं तुमसे बोलना भी नहीं चाहता ।···पैसे और मिठाई देना भी नहीं···।'

सिरोजा ने क्षुब्ध होकर आर्त स्वर में कहा—'परंतु मैंने कौन-सा अपराध किया है ? ···अब मैं आपके कमरे में भी नहीं आता, आपकी कोई चीज़ भी नहीं छूता ।···पापा ।'

'मालकिन कह रही थी, उसने तुम्हें सिगरेट पीते हुए पकड़ा था···क्यों, यह ठीक है न ? ···तुम सिगरेट पीते हो ?'

'जी, मैंने···मैंने एक बार पी थी ।'

'झूठ !···देखो फिर झूठ बोले तुम ?'—उसकी सरलता पर आनेवाली मुस्कान को छिपाकर रोष का नाट्य दिखाते हुए उसने उससे कहा—'मालकिन कह रही थी, उसने तुम्हें दो बार सिगरेट पीते हुए पकड़ा है ।···तो इसके मानी यह हैं कि तुमने तीन अपराध किए—सिगरेट पीते हो, दूसरे की सिगरेट चुराकर पीते हो, और फिर झूठ बोलते हो ।···तीन अपराध ! ···क्यों ?''

मुस्कराहट भरी नाचती हुई आंखों को घुमाकर उसने कहा—'हां पिताजी, सचमुम मैंने दो सिगरेट पी हैं ।···सच-सच कहता हूं, बस केवल दो बार—एक आज और···एक, एक किसी और दिन पी थी ।'

'हूं—तो तुमने दो बार सिगरेट पी !—मैं तुमसे बेहद नाराज हूं ? तुमको चाहिए था कि राजा बेटे बनो···अच्छे-से लड़के, शरीफ़, ईमानदार, राजा बेटे : लेकिन तुम तो खराब होते चले जा रहे हो । बदमाश कहीं के !'

वह फिर उसे समझाने लगा—'एक तो तुम सिगरेट पीते हो, यह कितनी बुरी आदत है !—और फिर दूसरे की चुराकर पीना !—यह तो और भी बुरी आदत है ।···मनुष्य को

चाहिए कि वह किसी दूसरे की वस्तु को छुए भी नहीं।···भला तुम्हें मेरी मेज़ से सिगरेट उठाने का क्या अधिकार ?···अब जैसे मालकिन के पास कपड़े हैं, गहने हैं—तुम्हें या मुझे, किसी को भी यह अधिकार नहीं है कि बिना उनसे पूछे हम उनकी चीज़ें ले लें।···जो कोई दूसरे की चीज़ को बिना उसकी आज्ञा के ही अपने व्यवहार में लानेन गता है वह बदमाश होता है, लोग उसे चोर कहते हैं !···तुम्हरे पास घोड़ा है, चित्र हैं, खिलौलने हैं, मुझे कोई अधिकार नहीं कि मैं उन्हें ले लूं।···भला तुम्हीं बताओ, मैं कभी कोई तुम्हारी चीज़ लेता हूं ?···इसी प्रकार तुम्हें भी मेरी वस्तु को लेने का कोई अधिकार नही !'

'आप उन्हें ले सकते हैं पापा।'—सिरोज़ा ने सरलतापूर्वक कह दिया—'आप मेरी कोई भी चीज़ ले सकते हैं।···अब जैसे यह पीला कुत्ता आपकी मेज़ पर रक्खा हुआ है !—यह मेरा है; लेकिन मैं इसका विचार भी···'

'तुम मेरी बात समझे नहीं'—पिता ने पुत्र से कहा—'यह कुत्ता तो तुमने मुझे दे दिया था, अब यह मेरा है; लेकिन सिगरेट तो मैंने तुम्हें नहीं दी थी न !···फिर तुम उसे बिना मुझसे पूछे ही क्यों उठा ले गए ?'

और इसी प्रकार वह उसे समझाने की निष्फल चेष्टा कर रहा था—निष्फल इसलिए कि वह उसे भली भांति समझा ही नहीं रहा था। और वह बच्चा, छोटा-सा, सात वर्ष का सरल सिरोज़ा, केवल उसे अन्य दैनिक घटना क्रम की साधारण बातों-सा सुन रहा था। प्रायः नित्यप्रति ही, सांयकाल के समय, वह अपने पापा से यों ही कुछ मजेदार बातें किया करता। उसने मेज़ पर रक्खे हुए कलम को उठा लिया, फिर कलमदान को देखने लगा, और फिर गोंददानी को देखकर सहसा उसके हृदय में एक प्रश्न उपस्थित हुआ, उसने पापा से पूछा—

'पापा गोंद किस चीज़ का बनता है ?'—उसने सहसा गोंददानी को उठाकर उस पर अपनी आंखें गड़ा दीं।

पिता ने उसे उसके हाथ से लेकर फिर मेज पर रख दिया और कहने लगा—

'फिर तुम सिगरेट पीते हो···यह कितनी बुरी आदत है ? मैं सिगरेट पीता हूं, इसका तात्पर्य यह थोड़े है कि सब लोग मेरी ही नकल करें। मैं सिगरेट पीता हूं, मैं यह जानता हूं कि यह कितनी बुरी आदत है !—और मैं अपने को कोसता हूं, इसी आदत के कारण अपने को प्यार नहीं करता !···'—उस समय वह मन-ही-मन अपनी इस उपदेश-प्रणाली की प्रशंसा कर रहा था 'सिगरेट पीने से मनुष्य बीमार पड़ जाता है, और जो लोग सिगरेट पीते हैं, वे बहुत जल्दी ही मर जाते हैं। उन्हें क्षय रोग हो जाता है। देखो न तुम्हारे चाचा इसी से मर गए। यदि वे सिगरेट न पीते होते, तो कदाचित् आज जीवित होते।'

गंभीरतापूर्वक सिरोज़ा लैम्प के 'शेड' को अपनी पतली-पतली, छोटी-छोटी अंगुलियों से छू रहा था—उसने एक निःश्वास छोड़ दी।

विचारों के गहन प्रांगण में छोटा-सा बालक, वह सिरोज़ा, न मालूम किन भावनाओं को लेकर, विचरण कर रहा था। उसकी मुख-मुद्रा स्पष्ट बतला रही थी कि वह किसी अत्यंत गंभीर विषय को सोच रहा था। कदाचित् उसकी अपरिपक्व भावनाएं मृत्यु की जटिल समस्या को हल करने का प्रयत्न कर रही थीं। वह सोच रहा था—मृत्यु—मृत्यु उसकी माता को और उसके चाचा को उससे छुड़ाकर बहुत दूर ले गई। मृत्यु कदाचित् छोटे-छोटे मुन्ने-मुन्ने बच्चों को इस संसार में अकेला रोता हुआ छोड़कर उनकी माताओं को और पितृव्यों को उनसे हटाकर,

उनसे छीनकर ले जाती है।···बहुत दूर आकाश में, रात्रि के समय चमकते हुए नक्षत्रों में उन्हें जाकर बिठा देती है, और वहां से वे पृथ्वी का अवलोकन किया करते हैं।···परन्तु स्वजनों का वियोग क्या उन्हें पीड़ा नहीं पहुंचाता ?

'मैं और उसे समझाऊं ?—वह सोच रहा था—'वह तो इस पर कुछ ध्यान ही नहीं दे रहा है।—जैसे साधारण बातचीत···और कुछ भी नहीं···कुछ···नहीं—नहीं उसे समझाना ही होगा। और···और···लेकिन मैं उसे समझाऊं कैसे ?'

वह कुर्सी से उठ खड़ा हुआ, और दोनों हाथों को पीछे की ओर बांधकर कमरे में टहलने लगा।

'मेरे समय में तो यह प्रश्न, यह क्या, इस प्रकार के सब प्रश्न अत्यंत सरलता के साथ हल कर लिये जाते थे।'

वह सोच रहा था—यदि किसी को सिगरेट पीते हुए पकड़ पाया, उसे दो-तीन हाथ मारे, फटकार बतलाई, फिर समझा दिया—बस चलिए, लड़का ठीक राह पर आ गया।···परंतु ऐसे लड़के कम ही होते थे। मां के पेट से चतुरता का पाठ सीखे हुए बच्चे सबसे छिपाकर, अस्तबल में जाकर पीते, वहां पकड़े गए, तो नदी के तट पर, किसी एकांत स्थल पर जाकर पीना अरंभ कर देते थे।···वे कभी भी अपनी उस बुरी आदत को छोड़ न सके।···मैं ही···मुझे 'ममा' मना करती थीं और मुझे मिठाई और पैसे का लालच दिया करती थीं। केवल लालच ही नहीं, वे मुझे दिया भी करती थीं।···परंतु आज···समय बदल गया···नई शिक्षा पद्धति में मारना-पीटना नहीं; प्यार से, लाड़ से, समझकर समझाना ही उत्तम रीति मानी जाती है।'

उस समय सिरोजा कुर्सी को मेज़ के पास रखकर बैठा हुआ नीली पेंसिल से अपने घर का चित्र सादे कागज पर खींच रहा था।

'आज रसोईदारिन की अंगुली कट गई, पापा !' आंखों को अपने चित्र पर गड़ाए हुए, वह अपने पापा को एक नई घटना सुनाने लगा, वह उसकी दृष्टि में अधिक महत्वपूर्ण थी। उसके हाथ भी रुके न थे, वह अपना काम भी कर रहा था और कहता भी चला—'उसकी अंगुली से खूब खून निकलने लगा। मालकिन ने कहा—पानी से धो लो, लेकिन उसने तो उसे मुंह से चूस लिया। गंदी ! छिः !—छिः—वह गंदी है न पापा ?'

फिर उसने बतलाया—भोजन के समय, एक बीन बजानेवाला छोटी-सी लड़की के साथ आया था। वह लड़की खूब नाचती थी, खूब गाती थी।

'उसे मैं क्या समझाऊं ?'—वह सोच रहा था—'उसकी विचारधारा इस समय न मालूम किस ओर प्रवाहित हो रही है। उसकी कल्पना-शक्ति इस समय न मालूम किन भावनाओं के प्रदेश में विचरण कर रही है ? वह तो मेरी बातों की ओर आकृष्ट भी नहीं हो रहा !···मैं उसे मारूं या फटकारूं या क्या करूं ?—मैं उसे कैसे समझाऊं कि सिगरेट पीना बुरी बात है।'

वह डिस्ट्रिक्ट-कोर्ट का उच्च पदाधिकारी, जिसे सर्वदा चोरों, बदमाशों, जुआरियों आदि को सज़ा देकर उचित मार्ग दिखाना पड़ता है, उसे, अपने पुत्र को समझाना आज दुरूह मालूम पड़ रहा था।

'प्रतिज्ञा करो कि आज से सिगरेट न पियोगे !'—उसने अपने पुत्र से कहा।

'प्रतिज्ञा !'—सहसा इसे सुनकर सिरोजा ने चित्र बनाना थोड़ी देर के लिए रोक दिया,

और पिता की ओर देखने लगा—'प्रतिज्ञा !'

'उसे प्रतिज्ञा के विषय में ही ठीक-ठीक समझाया नहीं जा सकता।···कितना पागल हूं मैं ! उससे प्रतिज्ञा कराता हूं ?···भला वह बच्चा प्रतिज्ञा के मूल्य को क्या जाने ?···यदि कोई अध्यापक मेरी इस उपदेश-प्रणाली को सुने और गुने, तो वह मुझे क्या कहेगा ? उसे समझाना है; परन्तु मैं उसे समझा नहीं सकता।···यदि वह मेरा पुत्र न होकर कोई साधारण अपराधी होता, तो मैं उसे भली-भांति समझा सकता था···।'

उसने झुककर सिरोज़ा का बनाया हुआ चित्र उठा लिया—'आदमी मकान से अधिक ऊंचा तो होता नहीं !···देखो तुम्हारे चित्र में तो सिपाही के कंधे तक ही मकान आता है।'

'लेकिन पापा, यदि मैं इसे मकान से छोटा बना देता, तो फिर इसकी आंखें कैसे दिखाई देतीं ?'

और उसका 'पापा' सोच रहा था—मैंने इससे इस विषय में बातें ही क्यों कीं ?···मैं तो इसे समझा रहा था न !

सिरोज़ा अपने पिता की गोद में बैठकर उसकी दाढ़ी को अपने छोटे-छोटे हाथों से सहला रहा था।—

'पापा, आपकी दाढ़ी···'

और वह सोच रहा था—'वात्सल्य !—यदि पिता के हृदय में ममत्व की मात्रा कुछ कम होती, अथवा नहीं होती···तो कदाचित् आज मैं इसे अवश्य समझा सकता था···'

बच्चे की गर्म सांसें आ-आकर उसके मुखमंडल पर स्निग्धता की छाया डाल जाती थीं। उसके हृदय पर कोमल भावनाओं ने अपने सुनहरे डोरों का जाल बिखेर दिया। वह सोचने लगा —सोने के समय मैं इसे समझाऊं क्या ?

घड़ी ने टन-टन करके दस बजा दिए—'जाओ बेटा, तुम्हारे सोने का समय हो गया।'

'नहीं पापा !···मुझे एक कहानी सुना दीजिए।···मैं सच कहता हूं, आप मुझे एक कहानी सुना दीजिए। बस, फिर मैं सोने चला जाऊंगा।'

वह कभी-कभी उसे कहानियां सुनाया करता था—एक परी थी—एक राजा था, एक रानी थी,—वह ऐसी ही बहुत-सी मजेदार कहानियां सुनाता था।···और बच्चा, छोटा-सा सात वर्ष का सिरोज़ा उसे बड़े ध्यान से सुना करता था। वह सोच रहा था—कौन-सी कहानी सुनाऊं ?—आज वह उसे उपदेश देना चाहता था।

'सुनाइए न !···'

और वह सुनाने लगा—

'एक राजा था। उसकी बड़ी-बड़ी मूंछें थी। बड़ी लम्बी दाढ़ी थी। उसके एक बहुत बड़ा महल था।···'

'हूं:—'

'उसके बहुत से नौकर थे। और उसके महल के सामने एक बहुत बड़ा बगीचा था। उसमें एक फव्वारा था। उसमें छोटी-छोटी मछलियां थीं। उसके बगीचे में बड़े-बड़े पेड़ थे। उसमें फल लगते थे—बड़े स्वादिष्ट। उस बगीचे में फूल भी लगते थे—सुन्दर, सुगन्धित···'

'हां, पापा और···!'

'उसके एक लड़का था। बहुत सुन्दर, बड़ा सुशील। वह कभी भी ज़िद नहीं करता था।

रात में जल्दी ही सो जाता और सबेरे जल्दी ही उठ बैठता। किसी की मेज से कोई चीज़ छूता न था।···लेकिन उसमें एक बड़ी बुरी आदत थी—वह सिगरेट पीता था।'

सिरोज़ा बड़े ध्यान से, पिता की आंखों में आंखें गड़ाए हुए सुन रहा था। 'इसके बाद?···क्या कहूं?'—वह सोच रहा था। क्षण-भर रुकने के पश्चात् वह फिर कहने लगा—

'सिगरेट पीने से उसे क्षय रोग हो गया और वह मर गया···उस समय उसकी अवस्था केवल बीस वर्ष की थी।···अब उसका वृद्ध पिता खूब रोया···कमज़ोर तो था ही, उसके शत्रुओं ने उसे मार डाला, और उसका राज्य छीन लिया···'

कुछ क्षण के लिए पिता और पुत्र, दोनों ही निस्तब्ध हो गए। सिरोज़ा ने कहानी को मनोयोग के साथ सुना। उसके नेत्रों से स्पष्ट झलक आ रही थी, कि वह डर गया है। खिड़की से बाहर काली रात्रि को देखते हुए उसने गम्भीरतापूर्वक धीरे-से कहा—अब सिगरेट कभी न पियूंगा।

जीवन की काली पाषाणमय विभूतियों को हटाने के लिए···रूखे-सूखे, लम्बे-चौड़े उपदेश···वे कुछ भी हमारा भला नहीं कर सकते···दर्शन, विज्ञान, उपदेश, व्याख्यान···हि—!···वे हमें सिखा ही क्या सकते हैं?···कविता, मनोरंजन, कहानी···हमें औषधि भी तो मीठी देना चाहिए?···पागल वे···अपने लड़कों को मार-पीटकर, उपदेश देकर समझना चाहते हैं···!'

छोटे-से सिरोज़ा ने फिर कदाचित् ही कोई बुरा काम···

अनुवाद : अमृतलाल नागर

अप्प दीपो भव : नागर

☐ भारतेंदु मिश्र

पुराना लखनऊ आज भी नज़ाकत, नफ़ासत, पहले आप-पहले आप, जनाबों और नवाबों का शहर है। भौतिकता की अंधीदौड़ में भी यहां यत्र-तत्र लखनवीपन बर्करार है। प्रेमचंद, निराला, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, अमृतलाल नागर आदि अनेक हिन्दी के यशस्वी गद्यकार किसी न किसी रूप में गहरे तक लखनऊ से जुड़े रहे। यशपाल, भगवती बाबू तथा नागर जी लखनऊ के त्रिदेव के रूप में विख्यात हुए—खूब छनती थी तीनों की आपस में। यशपाल और भगवती बाबू के मरणोपरांत नागर जी काफी अकेले हो गए थे। पिछले पांच-छह वर्षों से उनकी श्रवण शक्ति क्षीण हो चली थी। नागर जी ने लखनऊ के सांस्कृतिक लेखन का दायित्व अपने उपन्यासों, कहानियों तथा संस्मरणों के माध्यम से बखूबी निभाया। पुराने लखनऊ के चौक क्षेत्र में भूलभुलैया, रूमी गेट, घन्टाघर आसिफुद्दौला की बावड़ी, गोल दरवाजा, अकबरी गेट इत्यादि ऐतिहासिक भवन हैं तो साथ ही मांग ठंडाई की दूकानें। कहीं बेले की गाला बेचने वाले, कहीं इत्र की दूकानें और पास में ही कोठेवालियों के कोठे जो अब सुनसान हैं, प्रायः अन्य सभी इमारतों की तरह। नागर जी की कोठी इसी क्षेत्र की एक तंग गली में स्थित है। इसी कोठी में कुछ वर्ष पूर्व शशि कपूर ने अपनी फिल्म जुनून का दृश्यांकन भी किया था।

नागर जी ने हिन्दी गद्य को अनेक प्रकार से समृद्ध किया। 'बूंद और समुद्र,' 'अमृत और विष', 'सुहाग के नूपुर', 'महाकाल', 'मानस का हंस', 'खंजन नयन', 'नाच्यो बहुत गोपाल', 'अग्निगर्भा', 'शतरंज की मोहरें', करवट (1) तथा करवट (2) आदि उपन्यास, कहानियां तथा हास्य व्यंग्यपरक, संस्मणों के अतिरिक्त—आंखों देखा गदर जैसी ऐतिहासिक पुस्तकें राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका के साथ-साथ देश की साहित्यिक व सांस्कृतिक दृष्टि की परिचायक हैं। वे कुछ समय तक आकाशवाणी लखनऊ के हिन्दी कार्यक्रम के प्रोड्यूसर तथा कुछ समय के लिए हिन्दी संस्थान लखनऊ के उपाध्यक्ष भी रहे।

उनका किसी से कोई विरोध नहीं था। उर्दू-हिन्दी के मसले पर वे हिन्दी के समर्थन में कार्य करते रहे परन्तु राजनीतिक उद्देश्य से जो उर्दू थोपी जा रही थी उसका विरोध भी किया। वे उर्दू के अच्छे अध्येता थे। उनका कहना था "उर्दू-हिन्दी ही क्या हमें देश की अन्य भाषाओं

को भी सीखना चाहिए। हम विश्व की सभी भाषाओं के साहित्य को समझे बिना किसी एक भाषा को या उसके प्रयोग करने वालों को विकसित नहीं कर सकते"। नागर जी तमिल, बंगला मराठी, संस्कृत पाली व अंग्रेजी के ज्ञाता थे। पुरातात्त्विक विषयों में नागर जी की रुचि थी। उनका घर प्राचीन मूर्तियों, कलाकृतियों, पुस्तकों से समृद्ध एक छोटा संग्रहालय-सा लगता है।

लखनऊ का होने के नाते मुझे नागर जी के साथ उठने-बैठने के कई अवसर मिले। नागर जी युवा साहित्यकारों को पूरा सम्मान व प्रोत्साहन देते थे। युवा रचना कार मंच, लखनऊ के मेरे साथियों ने मिलकर बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र निर्वाण शताब्दी (1984) पर 'दस-दिशाएं' शीर्षक एक काव्य संकलन प्रकाशित किया था। सभी ने नागर जी से पुस्तक का विमोचन कराने की बात तय की, परन्तु अस्वस्थ व श्रवण शक्ति कम होने के कारण नागर जी ने इसके लिए मना कर दिया। पर हममें से कुछ युवकों का प्रस्ताव आया कि यदि नागर जी गांधी भवन तक नहीं आ सकते (जहां कार्यक्रम रखा गया था) तो हम सब उनके घर ही चलकर आशीर्वाद ले लेते हैं। उनसे जब यह प्रस्ताव रखा गया तो वे सहर्ष तैयार हो गए। उन्होंने स्नेहपूर्वक अपने अध्ययन कक्ष में हम सभी दस-बारह कवियों को बैठाया। अब चरण स्पर्श का क्रम शुरू हुआ दो वे गद्‌गद् कंठ से बोले—"अरे चरणों में क्या रखा है, मैं सभी कवियों को यही शुभकामनाएं देता हूं कि खूब लिखो, अच्छा लिखो, अपनी रचना को स्वयं परखो अध्ययन करो, निराश मत हो! प्रकाशक नहीं मिलता तो क्या हुआ—महात्मा बुद्ध ने धम्मपद में कहा है—'अप्प दीपो भव' अर्थात् अपने दीपक बनो। तुम सभी अपने दीपक बनो, अपने प्रकाशक स्वयं बनो।" बाद में पुस्तक का विमोचन करते हुए उन्होंने कहा—"मुझे कविताएं अच्छी लगती हैं, मैंने निराला की कविताएं सुनी हैं, भगवती बाबू की कविताएं भी अच्छी लगती थीं परन्तु मैं कविताएं नहीं लिखता। अब तो सुनाई भी कम पड़ता है, इसीलिए कवि सम्मेलनों में भी नहीं जा पाता। कोई बुलाता है तो भी असमर्थता व्यक्त करनी पड़ती है। यहीं कोई आ जाता है तो मुलाकात हो जाती है।" नागर जी ने सभी युवा कवियों को जलपान कराया।

हिन्दी के विस्तार के लिए नागर जी के मन में संकल्प भावना थी। जब प्रो० वासुदेव सिंह का निधन हुआ तो वे फूट-फूट कर रो पड़े। हिन्दी संस्थान से भैंसाकुण्ड तक प्रो० सिंह की अंतिम यात्रा का कार्यक्रम बन रहा था। प्रो० सिंह राजर्षि टण्डन के शिष्य तथा हिन्दी के प्रबल समर्थक होने के साथ ही उ० प्र० शासन में मंत्री भी रह चुके थे। अतः उनकी मृत्यु को राजकीय सम्मान देने के लिए तत्कालीन केन्द्रीय मंत्री श्री वी० पी० सिंह भी वहां उपस्थित थे। सभी हिन्दी के छोटे बड़े कवि लेखक शोकाकुल थे, किंतु भैया जी (पं० श्री नारायण चतुर्वेदी) तथा नागर जी दोनों की स्थिति उस समय अत्यंत दयनीय हो गयी थी। अस्वस्थ होने के कारण निशंक जी ने नागर जी तथा भैया जी को हिन्दी संस्थान से भैंसाकुंड तक पैदल न जाने के लिए अनुरोध किया, परन्तु वे किसी की सुनने के लिए तैयार न थे। अंततः बड़ी मुश्किल से वरिष्ठ साहित्यकारों ने समझा बुझाकर उन्हें तैयार किया।

सन् 1987 में सम्भवतः दिसम्बर की छुट्टियों में मैं लखनऊ गया। उन दिनों नागर जी 'करवट' का दूसरा भाग लिख रहे थे। अनेक प्रश्नों व उत्तरों के बाद मैंने नए लेखकों को संदेश देने का आग्रह किया। अध्ययन के अतिरिक्त श्रेष्ठ लेखन की अन्य शर्तें क्या हो सकती हैं? इसके उत्तर में वे बोले—"आज लेखन में अनुभव की कमी है—संस्कृत की एक उक्ति है—देशाटन, राजदरबार, वेश्या का घर, हाट इनको घूमे बिना कोई लेखक नहीं बन सकता। मैं मेहतरों के पीछे घूमा हूं, कोठों पर गया हूं। दस प्रतिशत प्रतिभा और नब्बे प्रतिशत श्रम लेखक को अच्छा लेखक बनाता है, हिन्दी में प्रतिभा की कमी नहीं है। दिशा की कमी है।

अज्ञेय की कविताएँ

सूर्यास्त

अन्तिम रवि की अन्तिम रक्तिम किरण छू चुकी हिमगिरि-भाल,
अन्तिम रक्त रश्मि के नर्तन को दे चुके चीड़ तरु ताल।
नीलिम शिलाखंड के पीछे दीप्त अरुण की अन्तिम ज्वाल
जग को दे अन्तिम आश्वासन अस्ताचल की ओट हुए रवि !

खौल हृदय-पट तू दिखला दे अपना उल्लस प्राणोन्माद,
शब्द-शब्द के कम्पन-कम्पन में भर दे अतुलित आह्लाद,
अक्षर अक्षर हो समर्थ बिखराने को जीवन-अवसाद
फिर भी वर्णित हुई न होगी इसकी एक किरण भर की छवि !

स्वयं उसी वैभव सौन्दर्य नदी में बह जा !
नीरवता द्वारा अपनी असफलता कह जा !
निरुद्वेग, मीठे विषाद में चुप ही रह जा
इस रहस्य अपरिय के आगे जादर से नतभर तक, रे कवि।

डलहौजी, 3 जून 1934

खद्योतदर्शन

चाँद तो थक गया, गगन भी बादलों से ढक गया
बन तो बनैला है—अभी क्या ठिकाना कितनी दूर तक फैला है ?
अंधकार/घनसार।
अरे पर देखो तो वो पत्तियों में
जुगनू टिमक गया।

बैजनाथ, काँगड़ा, जून 1950

तारा-दर्शन

हमने हाथ नहीं बढ़ाया : हमने आंखों से चूम लिया।
खड़े ही रहे हम, थिर, हाँ, हमारे भीतर ही ब्रह्मांड घूम लिया।
'कितनी दूर होते हैं तारे', हम सोचते तो सोचते ही रह जाते—
'कल भला भाग्य जागेंगे हमारे ?'
पर हम सोच कुछ सके नहीं, बस अपलक
खड़े रहे, उद्ग्रीव मानो चातक रह जाय ठिठक,
फिर, हाँ, स्वाती तो हमारी आँखों में ही उतर आया !
(खड़े रहे हम, थिर, हाँ, हमने हाथ नहीं बढ़ाया।)

वशिष्ठमुनि, मनाली, जून 1950

काँगड़े की छोरियाँ

काँगड़े की छोरियाँ कुछ भोरियाँ सब गोरियाँ
लाला जी, जेवर बनवा दो खाली करो तिजोरियाँ !
काँगड़े की छोरियाँ !

ज्वार मका की क्यारियाँ हरियाँ-भरियाँ प्यारियाँ
धन खेतों में लहर हवा की सुना रही हैं लोरियाँ—
काँगड़े की छोरियाँ

पुतलियाँ चंचल कालियाँ कानों झुमके— बालियाँ
हम चौड़े में खड़े लुट गए बनो न हमसे चोरियाँ—
काँगड़े की छोरियाँ !

काँगड़े की छोरियाँ कुछ भोरियाँ सब गोरियाँ।

काँगड़ा-नूरपुर (बस में), 24 जून 1950

कौन-सा सच है

दिन के उजाले में
अनेकों नाम सबके समाज में
हँसी-हँसी सहज
पुकारना
रात के सहमे अँधेरे में

अपने ही सामने अकेला एक नाम
बड़े कष्ट से, अनिच्छा से
सकारना

कौन-सा सच है ?
सब की जीत की खोज कर लाई थी हुई खुशी में
अपनी हार को
नकारना
या कि यह : कि एक ही विकल्प है
हार को लब्धि मान
अपने मिटने पर ही अपने को
वारना ?

कसौली (हिमाचल प्रदेश), 23 अक्टूबर 1968

जयशंकर प्रसाद के नाटक

□ गंगाप्रसाद विमल

जयशंकर प्रसाद के नाटकों की दुनिया इतिहास और कल्पना से निर्मित हुई है। यह संसार पूर्णतः भारतीयता का संसार है। इतिहास की घटनाएं बटोरना कठिन काम नहीं है—शायद अधिसंख्य रचनाकार ऐसा करते हैं। परन्तु घटना को रचना का अविभाज्य हिस्सा बनाने में सफल नहीं होते। इतिहास को जस का तस आधार बनाकर काम करने से कोई कृति ऐतिहासिक तो हो सकती है किन्तु वह एक सृजनात्मक कर्म है—ऐसा स्वीकार कर पाना कठिन है। इतिहास से घटनाओं का चयन लेखक अपने विशेष उद्देश्य के लिए करता है। प्रसाद जी ने ऐसा किया। इस काम में उनका शास्त्रज्ञ और कवि व्यक्तित्व समान रूप से सहयोगी है। शास्त्र से उन्होंने पुरावृतों का उत्खनन किया और 'भारतीयता' के मूल्यधर्मी आधार को अपनी कवि सुलभ ऊर्जा से आलोकित किया। बीसवीं शताब्दी के शेष सामाजिक उत्थानवादी आंदोलनों के समान ही उनके रचनाकर्म को, विशेष रूप से नाटकों को देखना उचित कहा जाएगा। उत्थानवादी आंदोलन भारतीयता, हिन्दू आदर्शवादी दृष्टि के आधारों पर जातीय श्रेष्ठता का प्रतिपादन मुखर होकर कर रहे थे। देखा जाये तो यह सब स्वाधीनता की कामना से जुड़े हुए शेष आंदोलन में भी ध्वनित होता है। यदि शेष जनांदोलनों में मुक्ति कामना सार्वजनिक गतिविधि के रूप में दिखाई देती है तो प्रसाद में वह अतीताधारित कथा में भिन्न-भिन्न रूप में दिखाई देती है।

प्रसाद के सम्मुख बीसवीं शताब्दी के प्रश्न थे। उनके उत्तरों के लिए वे अतीत की ओर गए। उनके आर्थिक नाटकों में 'सज्जन' महाभारत के कथासूत्र पर आधारित है। इस आर्थिक नाटक पर संस्कृत नाट्य परम्परा का भरपूर प्रभाव है। अतीत के पुनर्कथन की पारम्परिक शैली में प्रसाद उन जीवन मूल्यों की सार्थकता सिद्ध करना चाहते हैं जिन्हें वे भारतीय संस्कृति का पर्याय मानते हैं। विवाद हो सकता है कि भारतीय संस्कृति क्या केवल आचरणवादी मूल्यों द्वारा ही परखी जा सकती है? परन्तु प्रसाद के संदर्भ में इस प्रश्न को दूसरे ढंग से समझा जाना चाहिए और वह यह कि वे अपने नाटकों द्वारा क्रमशः अपने वैचारिक विकास की ओर उन्मुख हैं। उनके आर्थिक नाटकों में 'कल्याणी परिणय' का उल्लेख मिलता है। यह नाटक चन्द्रगुप्त नाटक में समाहित हो चुका है—ऐसा स्वीकार किया जाता है तथापि अपने स्वतन्त्र अस्तित्व में यह नाटक चन्द्रगुप्त द्वारा नंदवंश के ध्वंस के उपरांत यूनानी सेनापति सेल्यूकस की पराजय से संबंधित है। प्रसाद इस नाटक में शौर्य और नीति की विजय के द्वारा भारतीय संस्कृति के उदारतावाद की संपुष्टि करते हैं। उनके आर्थिक नाटकों में 'करुणालय' वैदिक पुरा सूत्रों पर आधारित एक गीति नाट्य है। विद्वानों ने इस नाटक को हिंदी का प्रथम गीति नाट्य स्वीकार

किया है । प्रसाद ने 'भाषा के अतिरिक्त संपूर्ण विधान में 'प्राचीनता' के अनुभावन के लिए इसे समग्रतः पारंपरिक शैली में रचा है । आर्थिक नाटकों में प्रसाद ने पुराण, वैदिक कथासूत्रों का उपयोग कर प्राक् ऐतिहासिक घटनाओं का ऐतिहासीकरण किया है जबकि उनके एक अन्य आर्थिक नाटक में वे बौद्धकालीन इतिहास का आधार लेकर एक चीनी यात्री की उपस्थिति द्वारा इतिहास की सत्यता पर जैसे मुहर लगाने का कार्य करते हैं। इन आरम्भिक नाटकों में नाट्यकला के प्रचलित मानों का ही स्वीकार प्रसाद में मिलता है। उनकी अपनी निजी शैली और कोशल के सूत्र यहाँ अनुपस्थित हैं। अपनी निजी शैली और कौशल का अवतरण उनके दूसरे दौर के नाटकों में होता है। आरम्भिक नाटकों का दौर 'राज्यश्री' के साथ संपूर्ण होता है तो आरम्भिक नाटकों का दूसरा दौर 'विशाख' से आरंभ होता है। 'विशाख' की कथा प्रसाद जी ने कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' से ली है। तक्षशिला के गुरुकुल से विदा लेकर विशाख नाटक के आरम्भ में कर्म क्षेत्र में प्रवेश करते दिखाया गया। यही वह सूत्र है जहां प्रसाद जी अपना एक विशेष नाट्यकौशल आरम्भ करते हैं। घटनाओं के ताने-बाने में एक हलचल मचाने वाला तनाव पैदा कर वे एक ऐसे नाट्यालोक का निर्माण करते हैं जिसमें समग्र कार्य-व्यापार नैसर्गिक से लगते हैं। इस नाटक में पहली बार प्रसाद अपने समय के कुछ महत्वपूर्ण प्रभावों से प्रभावित होते हैं व अपनी प्रतीक रचना में समसामयिक चरित्रों का प्रतिष्ठापन करते हैं। परन्तु प्रसाद के शिल्प का संपूर्ण विकास आगे चलकर 'अजात शस्त्रु' नाटक में होता है।

अजात शत्रु, जनमेजय का नाग-यज्ञ, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त और ध्रुवस्वामिनी जैसे नाटक प्रसाद को बीसवीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का एक विवादास्पद अग्रणी नाटककार धोषित करते हैं। यह प्रश्न एकदम भिन्न है कि क्या प्रसाद केवल पाठ्यक्रमों के नाटककार हैं या केवल साहित्यिक नाटककार—क्योंकि उनके नाटकों की मंचीय स्थिति अत्यन्त सोचनीय है। तथापि प्रसाद के नाट्य-कौशल को उनकी उपलब्धियों और उनकी आलोचनाओं के संदर्भ में ही देखा जाना चाहिए। उत्तरवर्ती काल के इन नाटकों के अतिरिक्त प्रसाद के दो नाटकों का अलग ही महत्व है वे हैं 'कामना' और 'एक घूंट।' इन दोनों नाटकों की वस्तु अत्यन्त महीन है। इनमें प्रसाद की 'साद्रश्य कला' विधान की अद्भुत क्षमताओं का प्रदर्शन हुआ है। रूपकत्व, साद्रश्य से भी कहीं अधिक चमत्कारिक कौशल का विविन इन नाटकों में मिलता है। कामना में प्रतीकात्मकता अनेक आयामी है। नाटक की आधारभूमि पुष्प द्वीप है। और प्रसाद ने तदनुरूप भाषा का सर्जन किया है। कामना के गीतों में सहज कवित्व का अद्भुत माधुर्य है जो उसे एक उच्चकोटि की कृति बनाता है। माधुर्य का यह तत्व पूरे नाटक को एक गंभीर 'क्लासिकीय' वैशिष्ट्य से आच्छादित किए हुए हैं। 'एक घूंट' का भी कथावृत काल्पनिक है। यह प्रतीकात्मक एकांकी प्रकृति के मानवीकरण द्वारा 'प्रेम' के संतुलन का संदेश देता है। इन दोनों नाटकों में प्रसाद जी ने 'प्रवृत्ति' के प्रति जो संलग्नता प्रदर्शित की है वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। इस अर्थ में प्रसाद के ये दो नाटक उस नई चेतना के नाटक कहे जा सकते हैं जो प्रकृति, पर्यावरण और सृष्टि के प्रति अतिरिक्त सजगता से भरे हुए हैं। काल्पनिक कथावृतों के माध्यम से प्रसाद ने कुछ ऐसे प्रश्नों को सामने रखा है जिनके बौद्धिक उत्तर हो सकते हैं परन्तु आवेगात्मक भाषा में उन्हें एक तर्कसंगत रूप से प्रस्तुत करना दुष्कर कार्य है। जयशंकर प्रसाद ने एक सिद्ध कवि की भांति अपनी काव्यात्मक भाषा द्वारा यह कार्य किया है। इन दोनों नाटकों में कवि प्रसाद की काव्य-प्रतिभा का लोहा मानना पड़ेगा। कवित्वमयता के

चमत्कार उन्होंने ऐसे आदर्श मूल्यों का पक्ष लिया है जो मानव जीवन के उत्कर्ष के साधन हैं। यद्यपि वे आज विरल हो गए है। यद्यपि उनका महत्व निर्विवाद है।

पौर्वत्व और पाश्चात्य नाटकों के संदर्भ में प्रसाद के नाटकों पर यदि विचार किया जाये तो उन्हें पौर्वात्य नाटकों को आधुनिकतावादी संस्पर्श देने वाला कहा जाएगा। पारसी ढंग के प्रचलित सम्मिश्रण से ऊपर उठ कर प्रसाद ने नाट्य सृजन को जिस क्लासिकीय गरिमा से मंडित करने का कार्य किया है वह पूर्णतः पौर्वात्य नाटकों की शास्त्रीय परम्परा का नाट्य-सृजन नहीं है। प्रसाद जी ने यत्र-तत्र नाटक के विधान में जो परिवर्तन किए हैं उनकी यदि गहराई से छान-बीन की जाय तो पता चलेगा कि प्रसाद जी पर आधुनिकतावाद का अनेक स्तरों पर प्रभाव है। यह आधुनिकतावाद, सुधारवाद, अतीत के प्रति समतापूर्ण आग्रहों के रूप में उन्नीसवीं शताब्दी में फलीभूत होता रहा है। स्वतन्त्रता की कामना, सामुदायिक उत्थान, राज सत्ताओं के दैवी स्वरूप के प्रति संदेह, व्यक्ति के अधिकाधिक व्यक्तित्व का उदय आदि कुछ ऐसे बिन्दु हैं जो आधुनिकता की सुधारवादी लहर में विकसित हुए हैं। जातीय गौरव, जो बहुजातीय भारतीय समाज के सामुदायिक स्वरूप में राष्ट्रीय गौरव का आकार ग्रहण करता है इसी आधुनिकतावादी लहर में क्रमशः एक राजनैतिक कारक बन जाता है। जयशंकर प्रसाद ने अपने अति भावुक, आवेगप्रधान नाटकों के उपरांत जिन विषयों को अपने नाटकों का आधार बनाया है वे यही विषय हैं जो भारत में विभिन्न स्तरों पर राष्ट्रीय अस्मिता को रूप देने के लिए राज नेताओं और समाज सुधारकों द्वारा महत्वपूर्ण समझे गए। इस अर्थ में जयशंकर प्रसाद भारतीय नाट्य जगत के पहले आधुनिक नाटककार हैं कि उन्होंने पूर्व और पश्चिम की नाट्य-कला को ही एक नये रूप में प्रस्तुत नहीं किया अपितु उन्होंने पश्चिमी संपर्क से आए भारतीय जनमानस के परिवर्तन को उसके सही अर्थ संदर्भों में सामने रखा। कालान्तर में हम जिसे प्रतिचित्रात्मक वास्तविकता के रूप में विकसित होने वाला भाव-बोध मानते हैं। वास्तव में प्रसाद जी ने यथार्थ की प्रतिशक्ति का वह रूप स्वीकार नहीं किया। बीसवीं शताब्दी के अधिकांश कवियों, कथाकारों से भिन्न प्रसाद जी 'वास्तविकता' के नए धरातल छूने के लिए आकुल थे। इसीलिए उन्होंने 'वर्तमान' के विवरणों को आधार बनाने की वजाय अतीत को आधार बनाया! उन्होंने मिथकीय 'वस्तुरूप' से 'सनातन' को स्वीकार नहीं किया अपितु सनातन के संदर्भ में भारतीय स्थिति का आकलन किया और यही बात आधार है जहां से वे 'वास्तविकता' के दृश्य रूप का परिगणन करने की वजाय उसकी अन्य विभाएं (अन्य आयाम) अन्वेषित करते हैं। केवल यही एक आधार है जहां हम प्रसाद को अपने समकालीनों से भिन्न पाते हैं, प्राचीन नाटककारों से भिन्न पाते हैं व पश्चिमी नाटकों के 'तात्कालिक सनसनी खेज' रूपान्तर से भिन्न पाते हैं। देखा जाये तो बीसवीं शताब्दी के नाट्यकारों में प्रसाद की एक अलग ही अपनी ही छवि है। मिथक और पुराकथा का प्रयोग कर वे कोरे ऐतिहासिक नाट्यकार नही हैं बल्कि वे इतिहास की टकराहट से उपजे सत्य को 'सनातन सत्य' के संदर्भ में परखते चलते हैं।

पौर्वात्य और नाटकों के पाश्चात्य रूप विधान में अन्तर है। यह अन्तर संस्कृतियों की अवधारणाओं का अन्तर भी है तो जीवन विधियों में निरन्तर जीवनगत प्राथमिकताओं के बदलते जाने से भी उपस्थित होता है। पूर्व में 'मानव मूल्यों के प्रति ममत्व' है तो पश्चिम में 'मानव मूल्यों' के प्रति संदेह। ममत्व और संदेह की इन स्थितियों पर दो ध्रुवान्तों जैसी दूरी सामान्य-सी बात है परन्तु प्रसाद ने नाट्य भाषा का निर्माण करते हुए इन दो ध्रुवों को मिलाने

की चेष्टा की है। केवल एक ही बिन्दु लें। प्रसाद के नाटकों के संवादों में संधियों और अर्थ
प्रवृत्तियों के संघात से उत्पन्न जो आवेगात्मक रूप है वह परिचय में मनोविज्ञान या मनो विश्ले-
षणात्मक पद्धति द्वारा व्याख्यायित एक ऐसा प्रारूप है जिस पर नाटक का पूरा का पूरा ढांचा
खड़ा हुआ है। जयशंकर प्रसाद ने पात्रों की मानसिक स्थिति के अनुरूप संवादों का जो निर्माण
किया है वह पश्चिम के दुखान्त नाटकों से चलकर आधुनिकतम नाटकों तक में एक जटिल
मानसिक स्थिति को व्यञ्जित करने में उपलब्ध है। पश्चिमी नाटकों में केवल अन्तर्द्वन्द्व की
अभिव्यंजना के लिए कोई शैक्षिक आधार तब तक कारगर नहीं है जब तक वह वहां की वस्तु-
गत स्थितियों से निष्पात नहीं है। अर्थात् जीवन की जटिलताओं से उत्पन्न जटिल मानसिक
स्थितियों को ही वहां स्वीकृति मिली है, जयशंकर प्रसाद ने मिथकीय प्रभामंडल के चंदोवे तले
ऐसी ही जटिलताओं के कार्यकलापों को अभिव्यञ्जित किया है।

प्रसाद मूलतः एक कवि हैं। उनका कवि निरन्तर उनकी जीवन-दृष्टि का नियमन करता है। अपने नाटकों में उन्होंने पारम्परिक ढंग के कवि का निर्वाह नहीं किया अपितु जिस नाट्य भाषा का सृजन उन्होंने किया उसमें कविसुलभ विशेषण प्रियता सर्वत्र मिलेगी। विशेषणों का यह प्रचलन उन्नीसवीं शताब्दी के नाटकों में तो है ही बंगाली भाषा में लिखे आरम्भिक नाटकों में भी उपलब्ध है। हस्तामलक सत्य की भांति प्रसाद और उनके समकालीन नाट्य-कारों पर संस्कृत और बंगाली नाटक की प्रतिच्छाया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वास्तव में कवि और दूसरे नाटकों का भावगत प्रभाव प्रसाद के नाटकों के प्रयोजन के आधार स्पष्ट करता है। उदाहरण के लिए प्रसाद के नाटकों में काल सम्बन्धी अवधारणा को लें तो हम पायेंगे कि ऐतिहासिक और काल्पनिक नाट्यवृतों में बराबर वे 'अतीत' के गौरव का 'कालातीत' रूप प्रस्तुत करते हैं। वह काल अपनी त्रिगुणात्मक स्थिति में भी सदैव वर्तमान रहता है। भटार्क एक संवाद में स्कन्दगुप्त से कहता है, "हां सम्राट! यह हमारा है, इसीलिए देश का है। आज से मैं सेना-संकलन में लगूंगा।" यहां केवल राष्ट्र के लिए व्यक्ति का उपार्जन एक निरन्तरता की उद्घोषणा करता है और दूसरी ओर काल की संज्ञा में 'आज' को द्योतन वर्तमान की निरन्तरता को व्यञ्जित करता है। इसी तरह मानव मूल्यों की सनातनता को लेकर प्रसाद भावुकता की भी सीमा पार कर जाते हैं। अपनी नाट्य भाषा में प्रसाद ने जो प्राजंलता बनाये रखी है वह वास्तव में उनके काल सम्बन्धी मोह का परिणाम है जिसमें यह प्रतीति झलकती है कि 'सनातन काल' का अन्तिम पड़ाव बौद्ध प्रभाव रहा है तथापि वे 'काल' के इस भाव की वर्तमान तक यात्रा कराते हैं। अजातशत्रु में उन्होंने आरम्भ में अजात का प्रतिहिंसा से भरा रूप चित्रित किया है पर धीरे-धीरे वह संस्कारित होता है—एक गुलाम जाति में वे जाग्रति और संस्करण के वे ही चिह्न देखते हैं। कवि प्रसाद की लोकदृष्टि गरिमा और कुलीनता के बिन्दुओं को ही संस्करण की अन्तिम परिसीमा मानती है, इसीलिए एक हिंसक, दस्यु प्रवृति के व्यक्ति में वे पुनः उन मूल्यों का प्रतिष्ठापन पाते हैं जो प्रसाद की दृष्टि में सर्वोत्तम है। यही उच्चता एक प्रकार की प्रयोजन कामी प्रेरणा है तथा साथ ही साथ मानव जीवन का लक्ष्य भी।

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में प्रयोजन के तीन आयाम हैं। एक वह जिसे प्रसाद जीवन के लिए अनिवार्य मानते हैं अर्थात् मनुष्य अपना संस्करण का समाज, जाति और विश्व के लिए सकारात्मक भूमिका निभा सकता है। दूसरा नाटकों का लक्ष्य एक गुलाम परतंत्रधीन, जाति को उसके अतीत के स्वातन्त्र्य से परिचित करा उसे सजग करना है। तीसरा प्रयोजन है मनुष्य के

जटिल मानस में अराजकता, अशांति, तनाव और हताशा को विगलित कर एक ऐसे संसाद का दिग्दर्शन देना न हों जीवन प्रवाह संतुलित है। अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त व ध्रुवस्वामिनी नाटकों की कथाएं इसका उदाहरण हैं। स्कन्दगुप्त की देव सेना का एक कथन तो जैसे प्रयोजन के इस पक्ष का प्रमाण है जब वह कहती है "यह एक क्षण का सदन अनन्त स्वर्ग का सृजन करेगा"। इस कथन की ध्वनि अपने लक्ष्यार्थ में प्रसाद की उपयोगितावादी मान्यताओं को भी पुष्ट करती है।

नाटकों के भीतरी संसार में प्रसाद जी की यह प्रयोजन वादी दृष्टि बराबर हस्तक्षेप करती है। 'अजाशत्रु' के चरित्र को एक ऊर्ध्वगामी नमूने के तौर पर बढ़ने देती है। अधिकांश प्रसंगों में उनके प्रयोजन का एक सुस्पष्ट संकेत उपलब्ध है और यह संकेत कभी उनकी मान्यताओं के बहाने उपस्थित होता है तो कभी समसामयिक संदर्भों में अपनी निराशा और पराजय के कारण। प्रसाद भाषा के एक अन्यतम शिल्पी हैं, वे कवि जन्य भावुकता के कारण भी हस्तक्षेप करते हैं। यह भी इन अनेक कारणों में एक है जिससे रंगकर्मी उनके नाटकों को प्रदर्शन के लिए उपयोगी नही पाते। यद्यपि अब प्रसाद के नाटकों के मंचन की चुनौती स्वीकार कर ली गई है तथापि उनके व्यात्चनिक-नाटकों की संभावनाओं का परिज्ञान अभी शेष है। नाट्य शब्द में वे अर्थ की जिन प्रतिच्छवियों का प्रवेश कराते हैं उनके सांस्कृतिक आधार व उनका मिथकीय स्वरूप अल्पज्ञता के कारण पूर्ण अनुभावना के आधार नहीं बनते। जबकि सत्य यही है एक मिथकीय प्रतीकों में कई स्तरों पर ये अर्थच्छवियां विद्यमान रहती है। प्रसाद के नाटकों की महत्तम उपलब्धि नाटकों की कथा, नाट्यभाषा एवं रंगकौशल में यही बहुआयामी अर्थ प्रस्तुत करने की शक्ति है। इस बहुआयामी शक्ति का प्रक्षेप वे इकहरी या स्पष्ट या कवि सुलभ सांकेतिकता द्वारा करते हैं अर्थात् एक भावुकतापूर्ण इकहरी स्थिति में अर्थों की पर्तें जैसे खुल पड़ती हैं।

जयशंकर प्रसाद के सम्मुख एक सांस्कृतिक लक्ष्य था। वह लक्ष्य जहां दूसरे लेखकों में राष्ट्रीयता के संकीर्ण कवच में विलुप्त हो गया वहां प्रसाद में वह मानवकल्याण की वृहत्तर में व्यन्जना पाता है। 'जनमेय का नागयज्ञ' यदि 'जातीय स्वाभिमान' का भाव परिपक्व करता है तो वहीं वह सब कुछ त्यागने की आकांक्षा को भी बलात् सामने ले आता है। 'स्कन्दगुप्त' में राष्ट्रीय मुक्ति के साथ-साथ सांकेतिक रूप में वैश्विक स्तर पर मानव-मुक्ति का भाव निरन्तर प्रतिबिंबित होता है। 'चन्द्रगुप्त' में उत्सवधर्मी भाव में भारतीय लोक संस्कृति का स्वरूप झलकता दिखाई देता। इतिहास के माध्यम से भारतीय लोकचित्त के ममत्व को प्रकट करने का जो कार्य प्रसाद जी ने किया है वह वास्तव में मनुष्य के अत्यन्त उदात्त, उदार और उच्च सांस्कृतिक स्तर को अभिव्यक्ति देना है। नाटकों में नाटकीय कौशल से इसका आवेगात्मक संदर्शन जिस जिस तरह होता है, उस तरह की तीव्रता अन्य विधाओं के एक रूप कौशल में संभव नहीं है। जयशंकर प्रसाद के नाटक इस अर्थ में अतीत से वर्तमान की ओर एक सेतु हैं जिनसे हम अतीत का स्पर्श करते हैं और यह अनुभाव पाते हैं कि शब्द की दुनिया में अतीत और वर्तमान अवधारणात्मक आधारों पर एकबद्ध हैं।

[3-ए/11 डब्लू० ई० ए० नई दिल्ली-110005]

एक थके आदमी का यूटोपिया

□ जॉर्ज लुई बोर्खेज़
□ अनुवाद : इन्दुप्रकाश कानूनगो

उसने कहा **यूटोपिया**, एक ग्रीक शब्द
जिसका मतलब हुआ **ऐसी कोई जगह नहीं है**।
क्वेवेदो

कोई-सी दो पहाड़ियां एक-सी नहीं होती, लेकिन धरती पर हर जगह मैदान एक-समान होते हैं। मैं ऐसे किसी देश में अपना कदम रख रहा था, अपने से पूछता हुआ, हालांकि इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, कि क्या वह ओकाहामा है या टेक्सास या अर्जेंटाइना का कोई प्रांत जिसे साहित्यिक लोग पाम्पा कहते हैं। दांये-बांये कहीं किसी तरह की फेंसिंग का नामो-निशान नहीं था। मैंने कवि एमिलिओ ओराइब की इन पंक्तियों को, हमेशा की तरह धीमे-धीमे दोहराया :

असीम अद्भुत मैदान के वक्ष:स्थल पर
और ब्राजील की सरहद के पास।
जो निरंतन विकास और अनंत विस्तार पाती जाती हैं।

सड़क उबड़-खाबड़ थी। बारिश होने लगी थी। करीब दो या तीन सौ गज दूर, निचले और चौरस और वृक्षों-से-घिरे एक मकान से आती रोशनी मुझे दिखाई दी। दरवाजा चौकीदार ने खोला जो इतना लम्बा था कि उसे देख मैं डर गया। वह भूरी वरदी पहने था। मुझे लगा वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा है। दरवाजे पर ताला नहीं था।

हम एक बड़े कमरे में गये जो लकड़ी की दीवारों से बना था। उसमें मेज और कुर्सियां थीं। छत पर लटके लैम्प से पीली रोशनी आ रही थी। जाने क्यूं मेज बड़ी अजीब लगी। उस पर पुराने किस्म की एक रेतघड़ी थी जिसकी बाहरी सतह पर शायद इस्पाती नक्काशी थी; वैसी घड़ी मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। कुछ क्षणों में मैं कुर्सी पर बैठे एक आदमी के सामने था।

मैंने कई भाषाओं का प्रयोग किया लेकिन हम एक-दूसरे को नहीं समझ सके। आखिर वह लेटिन में बोला। बात करने के इरादे से स्कूल के दिनों की धुंधली स्मृति को मैंने झिझोड़ा।

"पहनावे से लगता है तुम किसी और जमाने के हो", उसने कहा। "जुबानों का अन्तर लोगों के, और युद्धों के भी अन्तर का पोषक है। संसार फिर लेटिन की ओर पलटा है। कुछ लोग सोचते हैं फ्रांसीसी, लेमोसी, या पापिआमेंतो में दोबारा उसका पतन होगा, लेकिन फिलहाल कोई खतरा नहीं है। जो भी हो, मेरी दिलचस्पी न अतीत में है न भविष्य में।"

मैंने कुछ नहीं कहा; वही बोला, "शिष्टाचार से बढ़िया दावत चौपट हो सकती है; चलो, खाना तैयार है।"

अपने असमंजस को उससे छिपाते हुए मैं राजी हो गया। गलियारे के दोनों ओर दरवाजे थे। उसे पार कर हम छोटे-से रसोईघर में पहुंचे जहां सब कुछ धातु का बना था। जब लौटे हमारे हाथों में थालियां थीं जिनमें कार्नफ्लेक्स से भरे कटोरे, अंगूर के गुच्छे, एक अनजाना फल जिसका स्वाद कुछ-कुछ अंजीर-सा, और पानी के कलश थे। जहां तक मुझे याद है उसमें रोटी नहीं थी। मेरे मेजबान के नाक-नक्श तीखे थे, पर आंखें विचित्र। उसके सांवले संयमी चेहरे को नहीं भूल सकता जो मुझे दोबारा कभी दिखाई नहीं देगा। बोलते वक्त उस पर कैसा भी हाव-भाव नहीं उभरता। लेटिन के कारण बात करने में अड़चन हुई, बहरहाल बोला, "इस तरह यहां मेरे अचानक प्रकट होने से आपको ताज्जुब नहीं हुआ?"

"नहीं", उसने कहा। "सदियों से यहां इस तरह लोग आते रहे हैं। हालांकि वे यहां ज्यादा देर ठहरते नहीं। हद-से-हद कल तक तुम भी यहां से चल दोगे।"

उसकी आवाज में दृढ़ता थी। मैंने अपना ही परिचय देना उचित समझा। "मैं यूदोरो अकेवेदो हूं। मेरा जन्म 1897 में हुआ, ब्यूनेस आयर्स में। मैं सत्तर वर्ष का हूं। अंग्रेजी और अमेरिकन साहित्य का प्रोफेसर और काल्पनिक कथाओं का लेखक हूं।"

"शायद", उसने कहा, "मैंने मन लगाकर दो काल्पनिक कथाएं पढ़ी हैं: ट्रेवल्स ऑफ अकेप्टन लेमुएल गुलिवर जिसे कई लोग सच्ची मान लेते हैं, और दि सुम्मा थिऑलाजी। बहर-हाल तथ्यों की बात न करें तो बेहतर होगा। तथ्यों से अब कोई प्रभावित नहीं होता। वे खोज और विचार की चीजें हैं। हमारे स्कूलों में हमें शंका करने की, और भूल जाने की कला की शिक्षा दी जाती है—खास कर उसे ही भूल जाने की जो खानगी और देशज है। हम ऐसे समय में रह रहे हैं जो क्रमक्रमानुगत है लेकिन कोशिश अनादि अनन्त में जीने की करते हैं। अतीत के इने-गिने नाम ही हमें याद रहते हैं कि भाषा जिन्हें भूलना चाहती है। हम अर्थ-रहित विवरणों से कतराते हैं। हमारे पास न तारीखें हैं न इतिहास। न ही हमारे पास आंकड़े हैं। तुमने बताया तुम्हारा नाम यूदोरो है। मैं तुम्हें अपना नाम नहीं बता सकता, मुझे बस कोई-तो-भी कहा जाता है।"

"आपके पिता का नाम?"

"उनका कोई नाम नहीं था।"

दीवार पर शेल्फ थी। योंही एक पुस्तक खोली। अक्षर स्पष्ट थे, किसी अज्ञात लिपि में हाथ से लिखे थे। उनकी नुकीली रेखाओं को देख प्राचीन नोर्वे की र्‍यूनिक वर्णमाला का खयाल आ गया जो सिर्फ शिलालेख उकेरने में इस्तेमाल की जाती थी। मैं खुद से ही बोल पड़ा भविष्य के ये मनुष्य लम्बे हैं, खूब हुनरमन्द भी। अनायास उस आदमी की लंबी, सुन्दर उंगलियों पर नज़र पड़ी।

"अब जो देखोगे पहले कभी नहीं देखा होगा", उसने कहा और सन् 1518 में बेसेल में छपी थॉमस मोर की यूटोपिया सामने रखी जिसके कई पन्ने गायब थे।

कुछ मूर्खतावश मैंने जवाब दिया, "यह तो छपी किताब है। मेरे पास इस तरह की दो हजार किताबें थीं, हालांकि न इतनी पुरानी न इतनी कीमती जितनी यह है;" मैंने शीर्षक जोर से पढ़ा।

आदमी हंसने लगा। "दो हजार किताबें कोई नहीं पढ़ सकता। पिछली चार शताब्दियों के लम्बे जीवन में मैंने केवल चार-पांच किताबें ही पढ़ी हैं। असल में, ज्यादा पढ़ना नहीं, बार-बार पढ़ना ज्यादा महत्वपूर्ण है। प्रिंटिंग—कि जिसे अब रद्द कर दिया गया क्योंकि वह अनावश्यक मजमूनों का विस्तार करने की प्रवृत्ति को भ्रांति की हद तक बढ़ाती है—मनुष्य की निकृष्ट बुराई थी।"

"मेरे अद्भुत अतीत में", मैंने कहा, "ऐसा रहस्यमय-एहसास फैला था कि हर दिन, शाम से सुबह के बीच, ऐसे प्रसंग उभरते हैं जिनसे अनजान रहना शर्म की बात है। यह ग्रह केनेडा, ब्राजील, स्विस कांगो, और यूरोपियन कामन मार्केट के सामूहिक प्रेतों से बसा था। उन अफलातूनी सत्ताओं के पूर्ववर्ती इतिहास को शायद कोई नहीं जानता था, लेकिन हां, उन्हें स्कूल-मास्टरों के एकदम ताजा सम्मेलन के, या राजनयिक सम्बन्धों के आसन्न संकटों के, या सेक्रेटरी के किसी सेक्रेटरी से, उपयुक्त शैली में बनवाये गये, बड़ी चतुराई से धुंधभरे वक्तव्य कि जो राष्ट्रपतियों द्वारा जारी किये गये, उनके हर सूक्ष्म विवरण की जानकारी थी। ये चीजें भूल जाने के लिए ही पढ़ी जाती थी क्योंकि कुछ-ही घंटों बाद अन्य क्षुद्रताएं उन्हें धूमिल कर देती थी। निस्संदेह, किसी राजनीतिक व्यक्ति का कार्यालय ही सर्वाधिक सार्वजनिक रहता था। राजदूत या मंत्री ऐसा अपंग जीव था जिसे मोटरसायकल सवारों तथा सैनिक अंगरक्षकों से घिरे और फोटोग्राफरों द्वारा प्रतीक्षारत लम्बे-से शोर भरे वाहन में ढोना पड़ता था। शायद उनके पांव कट गये हैं, मेरी मां कहा करती थी। फोटो और छापा शब्द ज्यादा सच्चे थे बजाय उन चीजों के जिनका वे प्रतीक थे। जो छपा होता बस उसी में कोई यथार्थ था। **एस्से एस्ट परसिपि**—होना यानी छायांकित होना ही हमारी विलक्षण विश्वदृष्टि का आरम्भ, मध्य, और अन्त था। मेरे उस अतीत में, लोग मूढ़ थे; उनकी ऐसी मान्यता थी कि कुछ माल अच्छा है क्योंकि उसके निर्माता स्वयं ही हमेशा ऐसा दावा करते थे। डकैती प्रायः होती, हालांकि हर कोई जानता कि धन का संग्रह ज्यादा बड़ा सुख या मन की शांति प्रदान नहीं करता।"

"धन ?" आदमी ने दोहराया। "आज न तो कोई गरीबी का मारा हुआ है जो असहनीय रही होगी, न ही सम्पत्ति बटोरा हुआ है जो कमीनेपन की अत्यन्त तकलीफदेह दशा रही होगी। सब जानते हैं।"

"रब्बी की तरह", मैंने कहा।

वह समझा नहीं, बोलता गया, "और न ही अब शहर हैं। मेरे द्वारा किए गये उत्खनन से निकले बाहिआ ब्लांका नगर के अवशेषों के अध्ययन से अनुमान लगाया गया कि हमने ज्यादा बड़ी चीज नहीं खोई है। अब निजी सम्पत्ति किसी के पास नहीं है, और न ही विरासत। जब आदमी प्रौढ़ होता है, तब वह अपने और अपने एकांत के समक्ष होता है। तब तक शायद उसका एक बच्चा हो।"

"केवल एक ?" मैंने पूछा।

"हां, केवल एक। मानवजाति को बढ़ाते रहने का कोई मकसद नहीं है। कुछ लोग सोचते हैं सार्वभौमिक चेतना के लिए मनुष्य ईश्वर का दूत है, लेकिन दृढ़ता के साथ कोई नहीं कह सकता कि ईश्वर का अस्तित्व है। धरती के हर आदमी और औरत के लिए क्रमिक या तत्क्षण आत्महत्या के नफे-नुकसान पर, मेरे खयाल से, अब चर्चा चल पड़ी है। बहरहाल, बेहतर यही है हम अपने विषय पर लौट जायें।"

मैंने हामी भरी।

"शतायु होने पर व्यक्ति को प्यार या दोस्ती की जरूरत नहीं पड़ती। अनिष्ट से और अनिच्छुक से उसे भय नहीं लगता। वह किसी कला का, दर्शन का, या गणित का अभ्यास करता है या शतरंज का एकांतिक खेल खलता है। जब मर्जी हो खुदकुशी कर लेता है। वह अपने जीवन का स्वामी है। वह अपनी मृत्यु का स्वामी भी है।"

"क्या यह कोई उद्धरण है?" मैंने पूछा।

"हां, हमारे पास अब केवल उद्धरण ही हैं। भाषा उद्धरणों की ही व्यवस्था है।"

"और इस समय का महान एडवेंचर—अन्तरिक्ष यात्राएं?" मैंने पूछा।

"उन यात्राओं को सदियों पूर्व बन्द कर दिया गया। उनकी प्रशंसा करना होगा, लेकिन हम 'आगे, और आगे' से कभी छुटकारा नहीं पा सकते थे।" मुस्कराते हुए उसने बात बढ़ायी, "सभी यात्रायें अन्तरिक्षीय ही हैं। एक ग्रह से दूसरे ग्रह जाना सड़क-पार किसी खेत में जाने के समान है। जब तुम इस कमरे में आये तब अन्तरिक्ष उड़ान पर ही थे।"

"बिलकुल ठीक", मैंने कहा। "उन दिनों रासायनिक पदार्थों और पशुओं के विषय में बात होती थी।"

आदमी ने मेरी ओर पीठ कर दी और बाहर देखने लगा। खिड़कियों के पार, बर्फ और चांदनी की सफेदी से ढका निर्जन मैदान था।

मैंने हिम्मत कर पूछा, "क्या अभी भी म्यूज़ियम और पुस्तकालय हैं?"

"नहीं। हम अतीत को भूलना चाहते हैं, शोकगीत लिखने के अतिरिक्त उसका कोई मकसद नहीं। अब मृतकों के लिए श्रद्धांजलि, बरसी, या मूर्ति का कोई स्थान नहीं। हर एक को अपनी जरूरत के मुताबिक कलाओं और विज्ञानों को स्वयं उत्पन्न करना होता है।"

"तब तो हर एक अपना ही बर्नार्ड शॉ, अपना ही ईसा मसीह, अपना ही आर्कमडीज होगा।"

उसने गर्दन हिला दी।

"सरकारों का क्या हुआ?"

"शनैः शनैः वे अनुपयोगी होती गयीं", उसने कहा। "उन्होंने चुनाव कराये, युद्ध घोषित किए, कर एकत्र किए, सम्पत्तियां छीनी, गिरफ्तारियां की, सैंसरशिप लागू करने का प्रयास किया, लेकिन दुनिया में किसी ने उनके आदेश नहीं माने। प्रेस ने शासकीय नेताओं के समाचार और चित्र प्रकाशित करना बन्द कर दिए। राजनीतिकों को सच्चा काम खोजना पड़ा; कुछ कामेडियन बन गये और कुछ भजन-गायक। लेकिन वास्तव में जो हुआ वह इस सारांश से ज्यादा ही बड़ा जटिल था।" वह कहता गया, उसकी आवाज बदल गयी। "मैंने यह मकान बनाया, जो दूसरे मकानों जैसा ही है। मैंने इस फर्नीचर को और इन बर्तनों को तराशा। मैंने इन मैदानों में खेती की, जो उन लोगों द्वारा सुधारी जायेगी जिन्हें मैं नहीं जानता। चलो, मैं तुम्हें कुछ चीजें दिखाता हूं।"

वह मुझे पास के कमरे में ले गया। लैम्प जलाया जो पहले लैम्प की तरह था, छत से लटका हुआ। कोने में कुछ तारों से तना एक हार्प था। दीवारों पर चौरस कैनवस चित्रित थे जिनमें पीले रंग का प्रभाव अधिक था। कलाकृतियां एक ही कलाकार द्वारा रची नहीं लग रही थीं।

"मैं यही काम करता हूं" उसने कहा।

मैंने चित्रों को ध्यान से देखा और सबसे छोटे चित्र के सामने खड़ा हो गया जिसमें सूर्यास्त चित्रित था, या कह सकते हैं इंगित था और जो किसी असीम में व्याप्त था।

"तुम्हें पसन्द हो तो किसी भावी मित्र की ओर से भेंट स्वरूप ले जा सकते हो", उसने व्यावहारिक भाव से कहा।

मैंने उसे धन्यवाद दिया, लेकिन कुछ चित्र ऐसे थे जिन्हें देख मैं खिन्न हुआ। वे बिलकुल शून्य तो नहीं लेकिन लगभग वैसे थे।

"ये ऐसे रंगों में चित्रित हैं जिन्हें अतीत की तुम्हारी आंखें देख नहीं सकती", उसने कहा।

पल भर बाद, उसकी नाजुक उंगलियों ने हार्प के तारों को झनझनाया, कोई बिरली ध्वनि सुनाई दी। उसी क्षण दस्तक हुई।

एक लम्बी स्त्री और तीन चार पुरुष मकान में दाखिल हुए। शायद वे भाई बहिन थे या वक्त ने उन्हें वैसा बना दिया था। मेरे मेज़बान ने स्त्री से कहा :

"मैं जानता था आज रात तुम ज़रूर आओगी। निल्स से मिलती हो?"

"अक्सर मिलता है। वह हमेशा चित्रकारी में मशगूल रहता है।"

"उम्मीद है पिता से ज्यादा बड़ी सफलता हासिल करेगा।"

सामान उठाना आरम्भ हुआ। पाण्डुलिपियां, चित्र, साज-सामान, बर्तन—हमने मकान में कुछ नहीं छोड़ा। स्त्री पुरुषों के साथ काम करती रही। अपनी कमजोरी के कारण मैं शर्मिंदा हुआ, जिसकी वजह से उनकी सहायता के योग्य नहीं था। सामान उठा कर हम बाहर आए। किसी ने दरवाजा बन्द नहीं किया। मैंने ध्यान से देखा मकान पर काठी-जैसी छत थी।

पन्द्रह मिनिट की चहल-कदमी के बाद हम बांयें मुड़े। कुछ दूरी पर एक मीनार-सी दिखाई दी जिस पर वृत्ताकार गुम्बज़ था।

"यह श्मशान है", कोई बोला। "उसके भीतर जानलेवा चैम्बर है। कहते हैं किसी मानव-प्रेमी, शायद एडोल्फ हिटलर, ने उसका आविष्कार किया था।"

रखवाले ने, जिसका डील-डौल देख अब मैं चकित नहीं हो रहा था, हमारे लिए दरवाजा खोला। मेरे मेज़बान ने उससे दो-चार बातें की। बाड़े में दाखिल होने के पूर्व उसने हाथ लहरा कर विदा ली।

"लगता है ज्यादा बर्फ गिरेगी", स्त्री बोली।

ब्यूनेस आयर्स में, मेक्सिको स्ट्रीट्र पर बने मेरे घर में, मेरे पास वह कैनवस है जिसे हजारों साल बाद कोई-न-कोई उन वस्तुओं से रंगेगा जो आज सारी पृथ्वी पर बिखरी हुई हैं।

आदम पुत्र को क्रूसदण्ड

☐ लु शुन की कविता

वह अपने आप को
ईश्वर का बेटा
और इज्राइलियों का बादशाह
समझता है
इसलिए उसे
क्रूस उठाने का दण्ड मिलना चाहिए

सिपाही उसे राजसी वस्त्र पहनाते हैं
सिर पर कांटों का ताज रखते हैं
और कामना करते हैं कि भगवान उसे खुश रखे
उसके बाद वे उसके सिर पर
सरकंडे से चोट करते हैं
उस पर थूकते हैं
और फिर, उसके सामने घुटनों पर झुक जाते हैं
उसका भरपूर उपहास उड़ाने के बाद
वे उसके राजसी वस्त्र उतार डालते हैं
और उसके शरीर पर
फिर साधारण वस्त्र ही रह जाते हैं
देखो
कैसे वे उसके सिर पर मारते हैं
उस पर थूकते हैं
और फिर उसके सामने
घुटनों पर झुक जाते हैं

वह गंधरस मिली शराब नहीं पीना चाहता
वह संयत रहना चाहता है
ताकि इज़राइलियों द्वारा अपने 'ईश्वर के पुत्र' के लिए
किए गए समारोह का सुख ले सके

इज़राइली; जिन्हें अपने भविष्य के प्रति सहानुभूति है
और अपने वर्तमान के लिए घृणा !
चारों ओर घृणा, सहानुभूति और विद्रूपता है

हथौड़े की चोट सुनाई देती है
और कीलें उसकी हथेलियों में घुस जाती हैं
लेकिन सच में
इन बेचारे लोगों ने
अपने ईश्वरपुत्र को क्रूस का दण्ड दिया है
कि उसे वेदना का सुख मिले
हथौड़े की चोट सुनाई देती है
और कीलें तलवों में घुस जाती हैं
उसकी हड्डियों को भेदती
ताकि पीड़ा
उसके हृदय और अस्थियों की
मज्जा से हो गुज़रे
पर, सच में
इन वीभत्स लोगों ने अपने ईश्वर-पुत्र को
क्रूसदण्ड दिया है
कि उसे उस वेदना में सुकून मिल सके

सलीब ऊपर उठा दी गई है
और, वह हवा में लटक रहा है

उसने गंधरस मिली शराब नहीं पी
ताकि वह संयत रह सके
और इज़राइलियों द्वारा अपने ईश्वर-पुत्र के लिए
किए गए समारोह का आनंद ले सके
जिन्हें अपने भविष्य के प्रति सहानुभूति है
और अपने वर्तमान के लिए घृणा !

सभी गुज़रने वाले लोग
उसका अपमान करते हैं
उसे शाप देते हैं
प्रधान पादरी और अन्य धार्मिक
उसका मज़ाक़ उड़ाते हैं

और वे भी
वे दो चोर जिन्हें उसके साथ ही क्रूस दण्ड दिया गया था
जैसे वे भी उसकी खिल्ली उड़ा रहे हों
चारों ओर
घृणा, सहानुभूति और विद्रूपता है

हाथों और पैरों की वेदना द्वारा
वह उन दयनीय प्राणियों की पीड़ा का
रसास्वादन करना चाहता है
जो अपने ईश्वर-पुत्र को क्रूसदण्ड दे रहे हैं
और उन वीभत्स प्राणियों की खुशी के लिए
जो अपने ईश्वर-पुत्र को क्रूसदण्ड दे रहे हैं
और समझ रहे हैं
कि ईश्वर-पुत्र अब मरने ही वाला है

अचानक
उसकी छिदी हड्डियों में दर्द उठकर
उसके हृदय और उसकी मज्जा तक को
छेद जाता है
और उस पर
हर्षोन्माद और करुणा के कारण
उनिंदापन छाने लगता है

उसका पेट
करुणा और घृणा की टीस से
फूलने लगता है
पृथ्वी पर चारों तरफ
अंधकार का साम्राज्य हो गया
और उस साम्राज्य में
एक क्षीण-सी आवाज़ आती रहती है
'मेरे खुदा ! मेरे ईश्वर !

तुमने मुझे क्यों त्याग दिया ?'
खुदा ने
सचमुच उसे त्याग दिया है

और, इस तरह
आख़िरकार, वह आदम का पुत्र है
लेकिन इज़राइली लोग तो
आदम के पुत्र को भी
क्रूसदण्ड दे रहे हैं

ईश्वर-पुत्र को क्रूसदण्ड देना
इतिहास प्रश्न है
लेकिन, वो तो
सड़ जाने वाले खून की तरह
सड़ांध देते हैं
जिन्होंने आदम-पुत्र को क्रूसदण्ड दिया है

हिन्दी अनुवाद : साजीना

मुग्धा-विमुग्धा

□ राजकमल चौधरी

धर्म, नैतिकता, असंख्य देवी-देवतादि समाज के हाथ के साधारण हथियार हैं और कुछ नहीं मात्र व्यक्ति को वध करने हेतु समाज धर्म के गीत गाता है, नैतिकता की माला जपता है, देवी-देवतादि पर पुष्पहार सजाता है ।

नहीं जाऊंगा, नहीं जाऊंगा, मैं कभी भी कालीघाट नहीं जाऊंगा । काली महारानी के दर्शन नहीं करूंगा । भगवती हैं या नहीं । मुझे क्या···

'नहीं कमल जी, ऐसे मत कहिए । भगवती तो आदि देवी हैं—पंडित जी कान पर हाथ रखने की मुद्रा में बोलते हैं ।

पंडित जी बड़े अच्छे व्यक्ति हैं । पहले गांव में ही किसी संस्कृत स्कूल में थे । अब गांव-घर में हिन्दी अंग्रेजी छोड़कर संस्कृत कौन पढ़ेगा ? ल-लृ-लोट से भारी उच्चारण की अन्य कोई वस्तु नहीं ।

सपरिवार कलकत्ता में रहते हैं । आठ दस-बारह वर्ष के तीन परम सुन्दर पुत्र हैं । दो पुत्रियां भी हैं । एक विवाह के योग्य और दूसरी छः सात वर्ष की । पत्नी अपूर्व सुन्दरी, संस्कृत काव्य की पदमिनी नायिका की तरह । पांच सन्तान की मां हैं—यह न तो देह-दशा बात-व्यवहार और न बात-चीत से ही समझ में आता है । दो-चार महीने से किसी सेठ, किसी अफसर को भगवत पुराण का पाठ करवाने की इच्छा नहीं हुई है । और न कहीं यज्ञ-हवन का आयोजन ही हुआ है अधिकतर घर से बाहर ही रहते हैं। घर में रहेंगे तो दूधवाले का बकाया, मकान मालिक का किराया, अड़ोस-पड़ोस के कर्ज-उधार, बनिए की दुकान का उधार···

एक दिन सुनने में आया कि परिवार को वापस गांव भेज रहे हैं । स्वयं गंगासागर या जगन्नाथपुरी की तरफ जायेंगे । एक बार किसी सेठानी के साथ एक महीने के लिए पुरी गए थे । एक ही महीने में मोटे होकर सांढ़ हो गए । साथ ही दो चार सौ रुपये की आमदनी भी हुई थी । दूसरे दिन ही अक्षय यौवना पंडिताईन बोलीं—मेरे बिना क्या उनका एक पल भी चलेगा ?.बड़े आलसी हैं । कोई काम-धंधा करेंगे नहीं और पूरे दिन मेरे पास गप्प हांकते रहते हैं ।

एक बार, रात के दो बजे थे । अपने कमरे में लेटकर 'वर्ण रत्नाकर' पढ़ रहा था । नींद नहीं आ रही थी । बदहवास भयभीत-सी अलवर वाली सीढ़ी से नीचे उतरीं—कमल बाबू, कमल बाबू ।

कमरे से बाहर आया। आंगन में वह खड़ी थीं। एक ही वस्त्र से पूरी देह ढंके। ठंड से बार-बार कांपती हुई। अभी तक नहीं आए हैं। सबेरे उठकर बालीगंज की तरफ गए थे। मुझे डर लग रहा है। घर में अकेले हूँ। आप ही बतायें, मैं क्या करूं? सुबह कुछ नाश्ता नहीं था इसीलिए नाराज होकर गए हैं। मैं क्या देती नाश्ते में? घर में कुछ रहता तब तो! मैं अपने हाथ-पैर पकाकर देती क्या?' पंडिताईन के इस प्रश्न का मेरे पास कोई उत्तर नहीं?

दूसरे दिन शाम में पंडित जी लौटे तो पत्नी के हाथों में तीन-चार दस के नोट रख दिए। बाद में किसी ने कहा कि पंडित जी अपनी बड़ी पुत्री को किसी ट्राम ड्राईवर के हाथों बेच रहे हैं।

रेवती, पंडित जी की बेटी रेवती बहुत अधिक सुन्दर नहीं है। लेकिन तब भी क्या उसका विवाह रामशरण लाल ड्राईवर से होगी? मैथिल कन्या अभी मत्स्यगंधा, गौतमी, कुंती, अहिल्या आदि से आगे नहीं बढ़ सकती है।

"भगवती तो आदि देवी हैं। उनके सम्बन्ध में अभक्तिपूर्ण वचन नहीं बोलने चाहिए। कमल जी, रविवार को मेरे साथ कालीघाट चलिए"—पंडितजी पुनः कहते हैं।

लम्बोधर (असली नाम लम्बोदर। हमेशा बड़बड़ बोलते रहते हैं, इसीलिए लोगों ने लम्बोधर नाम रख दिया है) क्यों चुप रहते, "अभी धर्म-कर्म की बातें छोड़िए। चार हाथ ताश हो जाए।"

मैं और लम्बोधर एक तरफ। पंडित जी और दुखराम बाबू दूसरी तरफ। सोलह, सतरह, अठारह, बीस, डबल, रीडबल। डिक्लेयर। रंगसर, लाल, काला, सेट, पंजा सेट, चौका सेट। पंडित जी, बेईमानी मत कीजिए। अरे, कमल बाबू ने रंग बदल दिया, ऐसा नहीं होना चाहिए। सिंगल हैंड। चोर पकड़ा गया, वाह! अच्छा!! बढ़िया!!

पूरब वाले घर से लम्बोधर की सास पूछती हैं, "चौधरी, आज स्नान क्यों नहीं कर रहे हैं? बहुत देर हो गई। ड्यूटी पर नहीं जाना है क्या?"

लम्बोधर स्टेट ट्रांसपोर्ट में कंडक्टर हैं। पचहत्तर रुपये मासिक वेतन और सौ रुपये की ऊपरी आमदनी। धर्मपत्नी और सास के साथ रहते हैं।

दुखराम बाबू पहले गंजी के मिल में मिस्त्री थे। नौकरी छूट गई है। इसी बैलियाघाटा मैथिल मेस में भोजन करते हैं, कोई नई नोकरी ढूंढ़ रहे हैं। दरबान से रसोइया तक सब काम करने को तैयार।

मेस के रसोइया खेपन मिश्र खाना बनाते हुए गीत गा रहे हैं, "पिआ छोड़ू ई नोकरिआ चलू घूरिक' अप्पन गाम, पिआ, चलू तिरहुत धाम···"

खेपन मिश्र की नायिका को कलकत्ता अच्छा नहीं लगता। ट्राम बस की भीड़-भाड़ धरमतल्ला स्ट्रीट की ऊंची अट्टालिका, एस्प्लेनेड मैदान का विस्तार, चिड़ियाखाना के कृषकाय जीवजन्तु, ठाकुरिया झील की अठखेलियां करती मछलियां, लचका पुल, पुल पर बैठे निर्लज्ज स्त्री-पुरुषों की अगणित युगल जोड़ी, हंसी-मजाक, मुस्कान, लाउडस्पीकर से गरजते गीत, अभद्र वस्त्र, परम अभद्र तरीके से पहने विदेशी नारियों का दल।

खेपन मिश्र की नायिका सुदूर मिथिला के किसी गांव के किसी टोले के किसी आंगन की नारी है। ओखल, मूसल, ठेकी, चूल्हा, चक्की से बंधी नारी। गृहदेवता, कुलदेवता पति देवता के चारों तरफ प्रदक्षिणा देने वाली नारी। माथे के सिंदूर और हाथ लहठी के जेलखाने

में बन्द नारी। इसके ठीक विपरीत है—कलकत्ता। मगर कलकत्ता की नहीं, रेवती और खेपन मिश्र और पंडित जी, अलवर वाली और बेलियाघाटा मैथिल-मेस की बातें बतानी हैं।

अठारह सौ सत्तावन के सिपाही विद्रोह के समय में बने 'कल ही गिर जाने वाले' जैसी शारीरिक स्थिति वाले एक दोतल्ले भवन में स्थित है मैथिलमेस, यह घर।

दोतल्ले पर एक बंगाली परिवार रहता है—मां, दो वयस्क पत्नी, दोनों किसी स्कूल में टीचर हैं। एक बालक—सुवेश। पंडित जी भी अपने परिवार के साथ दोतल्ले पर ही रहते हैं। निचले तल्ले की एक कोठरी में लम्बोधर का परिवार, बची हुई तीन कोठारियों में मैथिला मेस और मेस के सदस्यगण।

जब लम्बीधर काले का दो सेट निकाल देते हैं तो स्नान करने चले जाते हैं। पंडित जी और दुखराम चौराहे पर पान खाने चल जाते हैं। मैं खेपन मिश्र से बातें करने लगता हूं।

"सरकार, भोजन में कितनी देर है?

हड़बड़ाइए नहीं, दस-पन्द्रह मिनट में थाली लगा देता हूं। भोजन तो सुबह ही हो गया रहता लेकिन क्या करूं कोई मेम्बर रुपया नहीं देता। सभी रुपये प्रबोध बाबू देते हैं। सभी मेम्बर आनन्द से खाते हैं और नौकरी करते हैं। प्रबोध बाबू के चार आदमी अभी मेस में खा रहे हैं। चारों बेकार हैं। नौकरी नहीं है तो प्रबोध बाबू के माथे पर बैठे हैं।

"प्रबोध मामा लोगों को माथे पर बैठने क्यों देते हैं? क्या फायदा है?

यह तो आप उन्हीं से पूछिए। स्वयं चार-पांच सौ रुपये कमाते हैं। इतने में तो स्वतन्त्र मकान लेकर सपरिवार रह सकते थे। खूब सुख और आनन्द से। मगर, प्रबोध बाबू का तो स्वभाव ही ऐसा है। इस घर में कोई भूखा रह जाये, यह उनसे नहीं सहा जाता।

यह बात खेपन मिश्र ठीक ही कह रहे थे।

मैं जब कलकत्ता आया तो पहले से ही यह धारणा बनाकर रखे हुए था कि इस विशाल जन-महानगरी में कोई किसी की सहायता नहीं करता। और इसी धारणा के कारण किसी मित्र, किसी सम्बन्धी किसी अपेक्षित के डेरे पर नहीं गया। छपरिया ठेलागाड़ीवालों के साथ एक खोली में ठहरा। खोली, खपड़ा, टाट, कच्ची ईंट का बनाए ऐसे मकान को कहते हैं जिसमें जेल-खाने के वार्ड की तरह पच्चीस-तीस परिवार रहते हैं। सम्मिलित घर, सम्मिलित ओसारा, सम्मिलित रसोईघर, सम्मिलित पानी का नल, सम्मिलित सर्वहारा जीवन। एक ही कमरे में सास-बहू, बाप-बेटा जीवन के दिन-रात बिताते हैं। लाज-मर्यादा, संकोच किसी चीज का बंधन नहीं···

सचमुच लाज और पर्दे का बंधन सामन्तवादी युग और ऐश्वर्य परम्परा का बंधन है। दरिद्र को भला क्यों लाज हो। शरीर के अंग-अंग को छुपाने का प्रयास, भीतर से किवाड़-सांकल ठोक कर नारी को बन्द करने का प्रयास, घूंघट, साड़ी-कंचुकी-साया-ब्लाउज का प्रयास सभ्य भाषा, सभ्य बोली सभ्य सुसंस्कृतज्ञता का प्रयास धनी लोगों के प्रयास हैं। संस्कृति और सभ्यता दरिद्र की सम्पत्ति नहीं, धनियों के विलास के साधन हैं···

उस खोली में रहकर आत्मा के सभी संस्कार, शरीर के सभी धर्म धो-पोंछ रहा था कि एक दिन हावड़ा जंक्शन के जनसंकुल भीड़ में प्रबोध मामा मिल गए। पूछा कहां ठहरे हो? कुछ जवाब न देकर चुपचाप उनके पहलवान से महाकाम शरीर, आधे गंजे माथे और आंखों से अविरल बहते स्नेह की ज्योति को देखता रहा। प्रबोध मामा किसी दूर के सम्बन्ध से मामा

लगते हैं। बहुत दूर का सम्बन्ध। तब भी, मेरे ऊपर उन्हें इतना स्नेह आया कि उसी समय सूटकेस और बिस्तर अपने निवास पर ले आए।

तभी खट-खट-खट-खट सीढ़ी से उतरकर रेवती आ जाती है, पंडितजी की बेटी रेवती।

बंगाली तरीके से कमरे में बंधी छापावाली साड़ी, अस्त-व्यस्त बाल पूरी पीठ पर फैले हुए। तुरन्त सोकर उठी हो, ऐसी आंखें। कांच की सस्ती हरी-पीली तीन चूड़ियां। रसोई घर के ओसारे पर खड़ी। बोली—'सरकार, एक दुअन्नी दीजिए। मां मांग रही है। सुन्दर चाचा के लिए मछली आएगी।'

'नहीं है दुअन्नी। रोज-रोज दुअन्नी-चवन्नी कहां से लाऊं?' सरकार अन्यमनस्क होकर बोलते हैं।

'सरकार, दुअन्नी दे दीजिए। मां को नहीं देंगे तो मुझे दीजिए। प्रबोध चाचा आयेंगे तो उनसे लेकर लौटा दूंगी।' रेवती से नहीं रहा गया, 'सुन्दर चाचा को मछली नहीं मिलेगी तो क्या कहेंगे।'

जेब में हाथ डालने की चेष्टा करते हुए मैं पूछता हूँ, "दो आने में कौन-सी मछली मिलेगी?'

'दो आने में झिंगी, गरचुन्नी, गरइ, इचना मिलेगी। लेकिन आपके पैसे नहीं लूंगी कमल भैया! आपके पास तो स्वयं ही कोई नौकरी नहीं है।' रेवती ने कहा। लेकिन जब मैंने पतली-पतली उंगलियों पर चवन्नी रख दी, रेवती कुछ सोचती, चिन्ता करती, कुछ हंसती सीढ़ी चढ़ कर ऊपर चली जाती है। रेवती के जाने के बाद कुछ देर मैं बैठा रहता हूं, फिर उठकर कमरे में आता हूं।

एक चौकी है। कम्बल, तोशक बिछाया हुआ। चादर नहीं है, तकिए का खोल भी नहीं है। जीवन की तरह न्यून है बिछावन। सिरहाने में किताबें फैली हुई है—अर्नेस्ट हेमिंग्वे की 'फिएस्ता', अपनी कविता की किताब, एक दो कॉपी। खिड़की के उस पार नलके पर साड़ी साफ करती कोई नेपाली स्त्री सस्वर गीत गा रही है। अपने गांव, घर, पहाड़, वन, निर्झर, लता-कुज का गीत। प्रेम गीत···

'आंगन में छलहुं बैसल, गांथै छलहुं सुन्दर फूल-हार
जोवन के फूल आ सिनेहक डोरी, छल सुरभित संसार,
माय आबि पुछलक—ककरा लेल गांथै छी फूल-हार
देलियै हम उत्तर—पिताजी के गरदनि में पहिरबै हम हार
आंगन में छलहुं बैसल, गांथै छलहुं सुन्दर फूल-हार

नेपाली युवती का बाप आकर पूछता है कि किसके लिए यह यौवन हार गूंथा जा रहा है। तब भाई आकर पूछता है कि कौन पहनेगा यह हार उत्तर मिलता है—बहन के लिए गूंथती हूं मैं हार। बहन आकर पूछती है तो नेपाली युवती उत्तर देती है—यह हार सखी के लिए है। और तभी सखी आती है—

'आंगन में छलहुं बैसल, गांथै छलहुं सुन्दर फूलहार
जोवन के फूल आ सिनेहक डोरी! छल सुरभित संसार
सखी आबि पुछलक, एहि मालास हएत ककर श्रृंगार

के थिक ओ भागमंत सखी तो जल्दी से बाज
किछु नहि हम कहलियै म 'गेल हमरा बड़ लाज ।

यह लाज जनकपुत्री सीता की लाज है। शकुन्तला की लाज है, हमारे धर्म, संस्कृति-सभ्यता की लाज है। इस नेपाली युवती की लाज, इस नेपाली जीत की लाज। और यह लाज आज कलकत्ता महानगरी में बेची जा रही है, खरीदी जा रही है, रात-दिन तोड़ी जा रही है, जलाकर खाक की जा रही है···

नेपाली युवती की लाज—मूल्य एक रुपया ।
बंगाली युवती की लाज—मूल्य दो रुपये
मैथिल युवती की लाज—मूल्य तीन रुपये
पंजाबी युवती की लाज—मूल्य चार रुपये
गुजराती सिंधी युवती की लाज—मूल्य पांच रुपये ।

चाय दो आने कप, भात चार आने प्लेट, सिगरेट ग्यारह आने पैकेट, युवती का शरीर···!!

नेपाली युवती कपड़े साफ करना बन्द करके मेरी खिड़की के पास खड़ी हो जाती है और हंसते हुए पूछती है—बाबू, एक बीड़ी दोगे ।

डब्बे से एक चार मीनार सिगरेट निकाल कर खिड़की के बाहर फेंक देता हूं। वह लपक कर सिगरेट उठा लेती है और कमरे से सलाई निकाल कर सिगरेट जलाती है। मैं अपने कमरे से निकल आता हूं, क्योंकि नारी जाति से अब मुझे बढ़ा भय होता है।

इतने वर्षों से मेरा मन जिस आवर्त्त में घूम रहा था, जिस परिधि के चारों तरफ चक्कर काट रहा था, उसके केन्द्र में थी यह नारी-जाति। सचमुच, जीवन रुक गया था, प्राण पागल हो गए थे।

किसी किन्नरी का स्वप्न देखता था—जीवन के शून्य मरुस्थल में वर्षा जल की तरह असीम स्निग्धता, असीम सौन्दर्य, असीम शांति संचरित करती आएगी। कोई कादम्बरी कोई महाश्वेता, कोई लवंगलता-सी नारी। परन्तु यही स्वप्न संपूर्ण अस्तित्व की समाप्ति हेतु भीषण कन्या बनकर आया, विचित्र झंझावत से प्राण आतमा, शरीर, मन को डुबाने हेतु···

सोचा था कि स्त्री एक कातर पत्नी बनकर, खोया मृग-शावक बनकर निकट आयेगी और मेरे सीने में छिप जायेगी। मेरा आश्रय ग्रहण करेगी, मेरे स्नेह से पुष्प वृक्ष जैसी पुष्पित, पल्लविल और सुगंधित होगी।

शयन कक्ष में शीतलपाटी पर विछी-पसरी रहती काले रेशम के गुच्छों सी केश राशि··· टेबल लैम्प की ज्योति···ज्योति की हल्की और हरी पंख···जैसे ज्योति कमल के पत्ते मेरी प्रिया की नींद से बोझल आंखों की पलकों पर चित्रादि अंकित करते रहते हैं···कच्चे मालदह आम की पुष्ट गुठली जैसी बड़ी और नुकीली पलकें···उस पर काजल की पतली-पतली लहरें ···उस पर आलस्य का, व्यथा का, बरसाती सिहरन का एक गीत···

मगर, यह सब कुछ कवि की कल्पना मात्र है। सत्य है यह नेपाली स्त्री, जिसका पति देवता किसी सेठ का दरवान है और यह दूसरे युवकों से बीड़ी मांगती रहती है। सत्य है यह रेवती जिसका पिता एक भी पैसे की कमाई नहीं करता और यह दूसरों से दुअन्नी-चवन्नी मांगती फिरती है।

कमरे से बाहर निकलकर सीढ़ी से चढ़कर ऊपर पंडित जी के कमरे में जाता हूं। कमरे में अकेली अलवर वाली रसोई बना रही है। रेवती और उसके दोनों छोटे भाई दूसरे कमरे में सुंदर झा से बातचीत कर रहे हैं।

'आइये, कमल बाबू ! आप से तो बात भी नहीं हो पाती। पूरे दिन आप बाहर ही रहते हैं'—अलवरवाली के स्वर में आदर है। मेरा आदर नहीं, रेवती के हाथों में जो चवन्नी दी थी, उसका आदर। नीचे बिछी चटाई पर बैठ जाता हूं।

कड़ाही में चढ़ी आलू-गोभी में शोरबा के लिए पानी डालकर उसे अल्युमिनियम की तश्तरी से ढंककर अलवरवाली मेरे पास आकर चटाई पर बैठ जाती हैं। कहती हैं, "पंडितजी कहते थे, आप बहुत अच्छा हाथ देखना जानते हैं। जरा मेरे हाथ भी देखिये। जीवन में कभी सुख भी लिखा है कि सब दिन ऐसे ही चूल्हे की आग में जलती रहूंगी !"

मेरे हाथ पर अलवर वाली का हाथ रखा हुआ है। कमरे में, कमरे के ओसारे पर और कोई नहीं है। रात के नौ-दस बज रहे होंगे। अलवरवाली सुंदर हैं, स्वस्थ हैं, शरीर पर यौवन के सभी चिह्न रक्षित-सुरक्षित हैं। चटाई पर फिसल पड़े आंचल से शरीर के किसी अंग को छिपाने-ढंकने का प्रयास नहीं हो रहा है। जैसे समय रुक गया है, स्थान-काल-गति-धर्मनीति सब कुछ खो गया है।

"यदि हम दोनों को ऐसी हालत में कोई देख ले, इस समय देख ले तो ?"—इतना कहते कहते अलवरवाली हंसने लगती हैं। हंसने से शरीर के सभी उभार हिलकोरने लेने लगते हैं।

और,

उसी समय कमरे में मधुकान्त आ जाता है, अलवरवाली का लड़का, हंसते हुए बोलता है—"मैं चाचा से कह दूंगा। मैं चाचा से कह दूंगा ?" "क्या कह दोगे ?" क्रोध से अभिभूत होकर चिल्लाती हैं अलवरवाली।" कह दूंगा कि कमल भैया ने तुम्हारा हाथ पकड़ा था" हंसते हुए पांच-छः वर्ष का मधुकान्त बोलता है और कमरे से निकल भागता है। मधुकान्त के पीछे उसकी मां दौड़ती है।

मैं सीढ़ी से नीचे उतरकर, खेपन मिश्र से कहता हूं, "सरकार, भोजन परोस दें। भूख लग गयी है।" भोजन करता हूं, सिगरेट पीता हूं। पान···

पंडित जी और दुखराम एक अपरिचित व्यक्ति के साथ लौटते हैं। बाद में मालूम होता है कि यही वह महाशय हैं, जिनसे रेवती का विवाह होगा। इन्हीं से पंडित जी गाहे बगाहे दस-बीस-पचास रुपए कर्ज-उधार लिए हैं।

बड़कू ठाकुर···कलकत्ता ट्रामवेज कम्पनी लिमिटेड में ए-क्लास ड्राईवर हैं। सब मिलाकर पुष्ट आमदनी है, हर महीने ढाई सौ रुपये। सभी बाल पके हुये। ललाट पर त्रिपुंड़, सिंदूर का बड़ा टीका और कण्ठ में तुलसी माला। वैष्णव हैं। पचास से ऊपर की उम्र होगी। हाल ही में दूसरी स्त्री (पहली स्त्री किसी मुसलमान दर्जी के लड़के के साथ भाग गयी थीं। दूसरी स्त्री को सात सौ रुपये में खरीदा था। दूसरी स्त्री से कोई संतान नहीं हुई। अब तीसरे विवाह के चक्कर में हैं) मेनका-रंभा के देश चली गयीं। बूढ़े और 'नीरस तरूरिह तिष्ठति आते। जैसे स्वामी के साथ रहने से लाख दर्जे बढ़िया था स्वर्ग के इन्द्र कानन में स्वाधीन पति की अक्षय यौवना बनकर विहार, वनविहार, जलविहार करना—बड़कू "ठाकुर को द्वितीया की समझ में आया। एक रात शरीर पर किरासन तेल उझलकर जीवन दीप की ज्योति बुझा ली। जल गई।

सती हो गई। लेकिन, अन्य पुरुष के साथ अभिसार करके असती नहीं बनी।

प्रोफेसर शैलेन कहते थे—यही सामन्ती जीवन का आनन्द और ऐश्वर्य है, स्त्री घर में चूल्हे के पास जलती रहे, सड़ती रहे। कोई हर्ज नहीं। मगर, किसी भी हालत में वह आंगन की दीवाल से बाहर न निकले। सुन्दर व्यवहार, सुन्दर पुरुष, सुन्दर शरीर, सुन्दर जीवन की कल्पना भी नहीं करे, इच्छा तक न करे।

और मिथिला का जीवन इसी भग्न होती सामन्ती जीवन-परंपरा का उदाहरण है। हरिसिंह देव का पंजी प्रबन्ध, सभागाछी की भीड़,—बारह वर्णों का भोज, सौजन्य भोज, गाँव घर का भयानक पर्दा, परदेश और सिमारिया-बैद्यनाथ। सिंहेश्वर-सोनपुर-गुलाबबाग की निर्लज्जता आदि सभी सामन्ती व्यवस्था के परिणाम हैं।

मैथिल जाति आदि जनक के युग से सामन्तवाद की अग्रिम पूजक रही है। मिथिला-दर्शन, मिथिला-कला, मैथिली साहित्य सबकुछ सामन्ती। मिथिला की मछली, पान, सुपारी की फांक तक सामन्ती। मिथिला आर्ट है साज-श्रृंगार का आर्ट, भोजन का आर्ट, शारीरिक ऐश्वर्य और मानसिक विलास का आर्ट!

ट्राम ड्राईवर बड़कू ठाकुर, पडित जी और दुखराम मेरे कमरे में आकर बैठ जाते हैं।

"यही हमारे कमलजी हैं। बहुत बड़े कवि हैं। समाज में बहुत आदर-सम्मान है।" —पंडित जी मेरा परिचय बड़कू से करवाते हैं—"यूं गांव के संबंध से मेरे भगीना लगेंगे।"

बातचीत शुरू होती है—फिल्म 'कठपुतली' की बैजन्तीमाला के नाच गाने से लेकर रेवती के विवाह तक। दुखराम इस यज्ञ के घटकराज हैं। बात को मुंह में संवारकर बोलते हैं, "मैं तो यही कहूंगा ठाकुर जी कि आप इस लड़की का उद्धार कर दें।"

पंडित जी तेज स्वर में रेवती को बुलाते हैं। खेपन मिश्र खैनी लटाते हुए मेरे पास आकर बैठ जाते हैं। रात ढल रही है। डूब रही है चांदनी। अब अंधेरा हो जायेगा।

रेवती किवाड़ के पास आकर खड़ी हो जाती है—"क्या बात है बाबूजी!" "यही मेरी बेटी है, ठाकुर जी!" पंडित जी बोलते हैं "रेवती, ठाकुर जी को प्रणाम करो।"

कमरे में आकर बड़कू को प्रणाम करने के बाद रेवती उल्टे पांव भाग जाती है। प्रणाम करते समय रेवती का चेहरा लाल हो गया था। आंखों में विचित्र तिरस्कार भाव···

कुछ देर बैठने और पान खाने के बाद बड़कू ठाकुर और पीछे-पीछे दुखराम, पडितजी, खेपन मिश्र चले जाते हैं। किवाड़ के पीछे में खड़ी रेवती मेरी चौकी के पास आती है।

मैं बहुत उदास हो जाता हूं, रेवती पूछती है, "कमल भाई, चाय ला दूं।"

अनुवाद : विभा रानी

मिसरी

□ सीताराम पारपिल्लेवार
□ अनुवाद : दामोदर खड़से

दो पहाड़ियों के बीच चिमखड़ी गांव बसा था। चिमखड़ी के चारों ओर घनी हरियाली बिछी थी। गांव का एक-एक आदमी सक्रिय हो उठा था। हरित क्रांति या ऐसा ही कुछ उस गांव में हो गया था। अरहर-बाजरा पैदा होने वाले खेतों में अब वहां किसान गन्ने जैसा केशक्रॉप उगा रहे थे। ऊपर वाले के भरोसे न रहकर जगह-जगह ट्यूबवेल्स और कुएं खोदकर धरती के पेट से जीवन्त चैतन्य स्रोत खेतों की क्यारियों से बह रहा था। और एक दिन हिन्दुस्तान के सभी अखबारों में "चिमखड़ी" का आदर्श गांव के रूप में गुणगान किया गया। जिनके प्रयत्नों से गांवों में समृद्धि कदम-कदम चलती आई, उस झोटिंग पाटील का सम्मान स्वयं राष्ट्रपति ने उन्हें दिल्ली बुला कर किया। संपूर्ण महाराष्ट्र ने "सहकार महर्षि" कहकर उनका गौरव किया।

झोटिंग पाटील के अनेकों प्रयत्नों से चिमखड़ी का कायाकल्प हो गया। हर साल अकाल में वहां के किसान को अपने ढोर गाय-बेल बेचने पड़ते थे, अब उसके पास मोटर साइकल आ गई थी। खेत वैभव के गीत गा रहे थे। गांव में एक शक्कर का कारखाना खुल गया था। आस-पास के उद्यमी युवकों को काम मिलने लगा था। आज तक यों सीढ़िया फेंकी जाती थी, उससे सरकार ने शराब बनाने की इजाजत दे दी थी। ढेर सारा पैसा मानों आकाश से चिमखड़ी पर बरस रहा हो। दसेक-साल पहले वहां ठीक से प्राइमरी स्कूल भी नहीं थी वहां अब आर्टस्''' साइंस''' कॉमर्स कॉलेज खुल गये थे। कॉलेज के संस्थापक, संचालक और व्यवस्थापक सब कुछ झोटिंग पाटील थे। गांव की सभी संस्थाओं पर उनकी स्नेह दृष्टि थी। कहीं वे अध्यक्ष तो कहीं सचिव, कहीं विश्वस्त तो कहीं संस्थापक थे। उन्हीं के दिए हुए डेढ़ लाख के अनुदान से कालेज को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। झोटिंग पाटील के पिता के नाम से कालेज खोला गया था। "उकुंडा पाटिल महाविद्यालय" झोटिंग पाटिल, विद्यावर्द्धिनी संस्था के चेयरमैन थे। संस्था की ओर से स्कूल, कालेज चलाया जाते थे। उनकी शिक्षा बड़ी मुश्किल से दूसरी तक हुई थी। "हम पढ़ नहीं सके तो कम से कम हमारे बच्चों को शिक्षा मिले" यह उनकी जिद थी।

सम्पूर्ण टापू में ही नहीं, महाराष्ट्र में भी झोटिंग पाटिल के शब्द सरकारी सिक्के की तरह हैं। कलेक्टर से थानेदार तक और मुख्य मन्त्री से गांव के पटवारी तक सब के सिर उनके सामने झुक जाते हैं। गांव के ही नहीं बल्कि आसपास के तीन सौ लड़के-लड़कियां आज उकुंडा महाविद्यालय में पढ़ते हैं। महाविद्यालय के लिए उन्होंने एक बुद्धिमान, अनुशासनप्रिय, विद्वान प्रिंसिपल खोज निकाला था। कभी वे उन्हें कहते—प्रिंसिपल साहेब, यहां यदि कालेज न खोलता तो, यहां के सारे लड़के ढोर चराते।

कहते हैं झोटिंग पाटिल ढोर चराते थे और अक्षर-शत्रु थे। झोटिंग पाटिल बड़ी मुश्किल से पढ़े और आगे भाग्य ने साथ दिया। लक्ष्मी अपने-आप उन तक चलते हुए आई। कोई कहता है, खेत में नांगर चलाते समय नांगर का नोंक सोने गुंड को लगा, कोई कहता है, आसपास जो डाके पड़ते थे, उसमें उनका अप्रत्यक्ष हाथ था।

कोई कुछ भी कहे···'अब' फिलहाल झोटिंग पाटिल सच्चरित्र, ईश्वर भक्त, स्नेही, दयालु और दानशूर समझते जाते हैं। पैर में चप्पल, घुटने के नीचे जाकीट, सिर पर सफेद शुभ्र टोपी—ऐसी उनकी सीधी-सादी पर व्यक्तित्व में नेतागीरी व्यक्त करने वाली पोशाक। सिर के सामने आधे से अधिक बाल जा चुके थे। पीछे से गर्दन तक उतरने वाली केशराशि थी। भरपूर मूंछें···पर सफेद बाल खोजने पर भी न मिलता। हमेशा चेहरे पर हँसी बिखरी हुई। होठों पर कराड़ की खास बोली। उसका उन्हें बहुत अभिमान था पर अब उन्हें अनेक ऊंचे पद विभूषित करने पड़ते। इसलिए भाषा सुधारने का वे प्रयत्न करते। परन्तु बोलते समय अब भी बरारी बोली की लचक आ ही जाती है। उनकी भाषा सुनकर कभी-कभी सुनने वालों का मनोरंजन भी होता है। कभी बम्बई गए तो मुख्य मुख्यमंत्री के चैंबर में पैर रखते ही कहेंगे—"कुछ भी कहो साहेब, इस टेप पर हमारे गांव आनाइच पड़ेगा। एक बार हमारे गांव आके तो देखो। घर-घर बिजली हय और हरेक के खोपड़ी में परकाश।···आप पर्गती या कुछ ऐसा ही कहते हैं न, वही।" एक बार तो चाचा नेहरू को दिल्ली जाकर मिलकर आ गए। उन्हें सीधे निमंत्रण ही दे डाला। चिमखड़ी सरकारी कारखाने का शिलान्यास पंडित नेहरू के हाथों हुआ था। उन्होंने भी "हिमालय के समान कर्तत्ववान" कहकर उनकी पीठ थपथपाई थी।···गांव के प्रांत के दो नहीं, तो सम्पूर्ण महाराष्ट्र का समाजकार्य, राजनीति, झोटिंग पाटिल की सलाह से चलती। इस बार का चुनाव में पार्टी का टिकिट किसे दें, यहां से किसे चुनकर लाना है, हटाना है, इसकी सारी चर्चा पार्टी के नेता उनसे ही करते!

गांव में कालेज शुरू होने पर उन्हें बड़ी खुशी हुई। मेरे गांव के कालेज का विद्यार्थी सारे महाराष्ट्र में ऊंचा उठना चाहिए। किसी भी स्पर्धा परीक्षा में ऊंचे क्रमांक से पास होना चाहिए—ऐसा उनका आग्रह होता। इसके लिए उन्होंने कालेज में योग्य प्रिंसिपल की नियुक्ति की। यह महाराष्ट्रीयन नहीं है, इस बात पर विद्यावाहिनी संस्था के सदस्यों की नाराजी थी ही। पर वे कहते हैं—"मराठी माणुस नहीं है तो क्या हुआ उसकी खोपड़ी में जलती मशाल हेच···वोईच होना। यहां सब बहोत अंधार है···यहां छोटा-मोटा दिया काम आएगा नहीं। यहां के बेबकूफ उसे बुझा देंगे। वह···मदरासी आदमी की एक बात है वो किसी से दबता नहीं··· नारायेनन साहब प्रिंसिपल की जगह के लिए एकदम फिट मानुस हेच···वह किसी से नहीं डरता ···लड़कों में क्या डिसीपिलीन रखी है उसने।"

मराठी पढ़ाने वाली पहले की प्राध्यापिका शादी के बाद, कालेज छोड़ जाने के कारण एक जगह खाली हो गई थी। मिस यशोधरा वर्तक उसका नाम। उसके जाने से की झोटिंग पाटिल कुछ बेचैन हो उठे हैं। पर इस स्थिति में भी उन्हें कुछ छुटकारा और मुक्ति का आभास होने लगा।

वह अच्छा पढ़ाती थी, ऐसा प्रिंसिपल नारायनन ने उन्हें बताया था वह दिखने में विशेष सुन्दर न भी रही हो, पर नाक-नक्श आकर्षक थे। बातचीत में भी बड़ी मीठी। झोटिंग पाटिल से बोलती तो उन्हें लगता जैसे उन्हीं की जीभ पर कोई मिश्री रख रहा हो। उसके कारण

एक और सुविधा थी। गांव में कोई भी आए, हार प्राध्यापिका ही पहनातीं। अतिथि को भी इस कारण समारोह कुछ अलग और मधुर होने का आनंद होता। कभी-कभी वे उनकी मीठी आवाज में एकाध स्वागत गीत गातीं। सारा कार्यक्रम दूध में शक्कर जैसा मीठा हो जाता।

झोटिंग पाटिल की स्नेहपूर्ण कृपादृष्टि के कारण यशोधरा वर्तक को स्टाफ में सभी लोग डरते। उसे दो एडह्वांस इंक्रिमेंट देने के कारण उनकी आपस में कानाफूसी भी होती। अब उनके ध्यान में आ चुका था कि लोगों के मन में डर ही नहीं, शंकाएं भी हैं। कुछ न बोलते हुए भी स्टाफ के लोगों की आंखें उसे कुछ सूचित कर जातीं। फिर वह उनकी ओर देखने का साहस भी न रखती।

बाद में एक मुलाकात में झोटिंग पाटिल को अकेला देखकर वह बोली" अब लोगों की नजरों से मुझे डर लगने लगता है। वे मेरी ओर शंका से देखते हैं, ऐसा लगता है···।

"क्यों, क्या बात है भई? उनके बाल-बच्चों को तुमसे कोई तकलीफ हो गई क्या?" थोड़ी आंखें फाड़कर वे बोले।

"नहीं···नहीं, साहब," सभी उन्हें "साहब" कहते, वह आगे बोली" वैसे मुझे प्रत्यक्ष किसी ने कुछ नहीं कहा लेकिन लगता है आपका नाम यूं ही इसमें नहीं उलझना चाहिए।···मेरा क्या? मैं एक साधारण-सी प्राध्यापिका···आपकी महानता हिमालय सी। मेरे कारण बेकार ही आपकी प्रतिष्ठा को आंच नहीं आनी चाहिए···अब मुझे डर लगने लगा है।"

"किस बात का डर है, भई? तुम क्या उनके टुकड़ों पर पलती हो? अपनी कमाई खाती हो। तुम-सी संघर्षशील और स्वाभिमानी महिला मैंने अपनी जिंदगी में आज तक नहीं देखी।"
"नहीं साहब, मुझे बदनामी से मुक्त कीजिए। छुड़ाइए। लोगों की नज़रें अब तीर-सी चुभने लगी हैं।"

उसकी आंखों में आंसू जम गए। किसी के भी आंसू झोटिंग पाठिल से नहीं देखे जाते। उन्होंने बांहों में भर लिया। पीठ पर स्नेह भरा हाथ फेरने लगे। कम से कम आज तक तो उसने उनके किसी आग्रह को नहीं नकारा था। और नकार भी कैसे सकती थी? उसके सामने वे जैसा कहते वह उसी प्रकार करते आई थी। उनके व्यक्तित्व का न जाने कैसे उस पर जादू चल गया था। अपने-आप सब घटित होने लगा। 'नहीं' कहने का धैर्य उसमें बचा ही नहीं था। झोटिंग पाटिल ने उसके लिए क्या नहीं किया था? उस अकेली को ही, वह सब मालूम था···। उसके पिता बंबई के बैंक में एजेन्ट थे। उन पर चार लाख की हेराफेरी का आरोप था वास्तव में वे फांसे गये थे। उनकी नौकरी तो जानी थी। साथ ही हाथों में बेड़ियां भी पड़ती···जमानत लेने भी कोई आगे नहीं आया। उसे साहब पर भरोसा था। उसने सारी कहानी उन्हें सुना दी। सुनते ही उन्होंने उसे अभयदान दिया। मुख्यमंत्री, कलेक्टर और डी० एस० पी०—सबको उसकी उपस्थित में फोन किए। वह गद्गद् हो गई थी। झोटिंग पाटिल के लिए उसका हृदय अतिआदर से भर आया था। बाद में, उसके पिता को बैंक ने सिर्फ नौकरी से ही अलग किया, सज़ा वगैर कुछ नहीं दी गई। झोटिंग पाटिल ने लगाए ख्याति-प्राप्त वकील के कारण प्रत्यक्ष आरोप सिद्ध नहीं हो पाए। कोर्ट में उन्हें संशय का लाभ मिला। लेकिन इस कारण उन्हें नौकरी से अलग होना पड़ा। झोटिंग पाटिल ने मुख्यमंत्री की सिफारिश से चांदा के पास सिमेंट फैक्टरी में उन्हें आफीसर की पोस्ट दिलवा दी। उसके भाई को भी बी० ई, होने के बाद भी मनलायक नौकरी नहीं मिल पा रही थी। धीरे-से उसने उनके पास भाई का विषय छेड़ा। वे बोले—

"नौकरी ?···पिता नौकरी पर हैं···तुम नौकरी करती हो···उससे क्यों नौकरी करवाती हो ? उसे और क्यों नहीं पढ़ने देती ?"

"और आगे पढ़ाना इतना आसान है क्या ? वैसे ही हमारे हाथ बहुत छोटे हैं" असहाय सी वह बोली थी।

"फिर मेरे हाथ किसलिए हैं ? कहते-कहते उन्होंने अपने हाथ फैला दिए थे और अचानक वह उनकी बाहों के घेरे में समा गई थी। उन्होंने अधिकार नहीं जताया। आग्रह भी नहीं किया। कुछ अधिकार से जबरदस्ती नहीं मांगा। सब कुछ कैसे अपने-आप हो रहा था और वह समर्पित हो गई थी। तूफान के बीच पेड़ के समान वह भरभरा गई थी। उस दिन वह सब-सब भूल गई—उसकी शिक्षा, उसकी प्रतिष्ठा, उसका यौवन···ऐसा कैसे हुआ ? उसे भी नहीं मालूम। पिता की उम्र से भी अधिक उम्र का झोटिंग पाटिल उस दिन उसे लपेट गया। वह सिर्फ देती रही। समर्पण की सिद्धता में उस क्षण वह स्वयं को भी भूल चुकी थी। कैसे हुआ··· कैसे ? वह स्वयं से ही पूछती रही। झोटिंग पाटिल को भी पश्चाताप हुआ। कम-से-कम उन्होंने वैसा प्रदर्शन तो किया। मुट्ठियां जमीन पर पटकते हुए वे भर्राते स्वर में बोले—बाई, यह सब कैसे हो गया ? हाय भगवान ! तूने ही बुद्धि भ्रष्ट कर दी ! क्यों ?···। सारे दोष वे भगवान पर थोपकर मुक्त हो गये। वह पूर्ववत् हो गई। जैसा कुछ भी नहीं हुआ, ऐसा वह रहने लगी। बाद में उसका भाई अगली पढ़ाई के लिए मूसच्युसेटस् चला गया। पर अब वह उनके सामने बहुत नहीं जाती थी। उसे उनका नहीं खुद का डर अधिक लगता था। और जब उसने कहा कि लोग शक की निगाह से देखते हैं तो पल भर वे भी सोचने लग गए। उसका वहां रहना उनके लिए वास्तव में खतरे से खाली नहीं था। सांप पालने जैसा यह मोह पालना है, यह उन्हें मालूम था। उनका हिमालय-सा कर्त्तव्य, नाम, कीर्ति, प्रतिष्ठा—इन सबके सामने वह वास्तव में बहुत छोटी थी। पर यदि उनके चरित्र पर उसके कारण आंच आने लगे तो ? आज तक कमाया हुआ वैभव कृष्ण की द्वारका-सा समुद्र में डूबने वाला था। नहीं, वैसा नहीं होना चाहिए। फिर उन्हीं ने पहल की, किसी पिता समान। शक्कर के कारखाने में कुछ दिनों पहले ही एक सहायक केमिस्ट लगा था। 'शुगर टेक्नालोजी' में उसने फॉरेन से डिग्री लाई थी। उससे उसकी शादी बड़ी धूम-धाम से करवा दी। लड़के को भी लगा पत्नी का आगमन मंगलमय है। शादी के दिन ही उसे आर्डर मिली। बम्बई के तंत्र विद्यालय में शुगर टेक्नालोजी का हेड ऑफ दी डिपार्टमेंट के पद पर उसकी नियुक्ति हुई थी। दोनों उनके पैरों पर झुके, तब उन्होंने आशीर्वाद दिया जैसे कोई पिता अपनी बेटी को दे रहा हो···"बच्चों सुखी रहो ! भगवान तुम्हें बरकत दे···धन दौलत दे ···बच्चे दे···।"

वह गई तो झोटिंग पाटिल को लगा अब उनके जीभ की मिश्री चली गई। इतना अब मीठा कोई नहीं बोलेगा। परन्तु उसने उन्हें अपनी अलग अनुमति दी।···अब भी उनका यह क्षेत्र नहीं छूटा था·· पत्नी को मरे तीस साल हो गये थे···मन मारकर···मन पर पत्थर रखकर ···वे दिन काट रहे थे···फिर समाज सेवा में भिड़े···इतने भिड़े कि सिर उठाने की भी फुर्सत न थी। खुद के बारे में सोचने का अवसर ही न था···वे तो सब कुछ भूल गए थे···हम तो मर्द हैं इसकी अनुभूति उन्हें यशोधरा बर्तक ने दी। अच्छा है या बुरा ? यह वे खुद भी तय न कर पाते···वह मिश्री घोल गई थी। शेर के मुंह को खून लग चुका था···।

कालनिद्रा में सोया शेर जग चुका था···अब उसकी आंखें अधिक नटखट हो गई थी।

सफेद बालों के लिए खिजाब आया था। रोज 'शेव' क्यों करनी, यह अब उन्हें मालूम होने लगा था। उनके कार्यों में कुशलता तो थी ही, अब युवकों का आवेश भी वापस आ गया था।

यशोधरा वर्तक के जाने के बाद खाली जगह पर नियुक्ति के लिए प्रिंसिपल ने सभी प्रसिद्ध अखबारों में विज्ञापन दिये। एक ही जगह के लिए कितने ही आवेदन आ गए। एम० ए० अन्य क्षेत्रों में निपुणता, विविध कृर्तत्व का विवरण देखकर सात लोगों को इंटरव्यू के लिए बुलाने का निश्चित हुआ।

एक दिन प्रिंसिपल साहब सात लोगों की लिस्ट लेकर झोटिंग पाटिल की कोठी पर गए। आग्रहपूर्वक कहा—"आप संस्था के चेअरमैन हैं। सिलेक्शन बोर्ड के आप प्रमुख होंगे। सिलेक्शन आप स्वयं करें। सहायता के लिए मैं और शक्कर कारखाने के मैनेजर गद्रे रहेंगे।"

उनकी ओर वे हंसते हुए बोले, "मैं अशिक्षित···वे सब डिग्रीवाले···उनको मेरा जैसा आदमी क्या पूछेगा? आप ही यह काम कर लीजिए न!"

"सवाल शिक्षा का नहीं! चुनाव कैसा और किसका होना चाहिए, यह आपको अनुभवों से अच्छी तरह मालूम है। आपका ही फैसला अंतिम होगा। मैं भी सिलेक्शन कमेटी पर रहूंगा। परन्तु मेरे फैसले पर तूफान मचने की संभावना है।"

"ऐसा क्यों कहते हैं?" मुंह चलाते हुए वे बोले।

"एक बात तो यह है कि मराठी मेरा विषय नहीं रहा। मैं अर्थशास्त्र का ग्रेजुएट हूं। वैसे मैं मराठी आदमी भी नहीं। मेरे निर्णय पर कोई भी उंगली उठा सकता है। आपका निर्णय सभी को मान्य होगा, क्योंकि आप पर सभी का भरोसा है।"

"क्या कहते हैं!" वे आश्चर्य से बोले। पिछले दो सालों से कॉलेज को सरकारी मान्यता मिले, इसके लिए वे भाग दौड़ कर रहे थे। शिक्षा मंत्रालय की ओर से अभी भी हरी झंडी नहीं मिली थी।

"ठीक कहता हूं वे मंत्री साहब है न?···अपने वे···मुलगुंद···शिक्षा विभाग के मंत्री···उन्हीं को मिला···दबाव डाला। कहा, भूलिए मत। चुनाव छः महीने पर ही हैं···फिर कम-ज्यादा हो गया तो मुझे कुछ न कहिएगा।"

"फिर क्या मजाल है, उनकी ना कहने की···? और इस बार तो आप भी···" उनकी आंखों में नटखटपन चमक रहा था। जीभ पर लार जमा हो गई थी। झोटिंग पाटिल भी मुस्कराये। साबुन के झाग की तरह।

"ऐसा बोलते? तो आपके ध्यान में ये बात है···पर बता देता हूं। सब काम आपको ही करना है···।"

"हम कैसे भूलेंगे साहब? कल आपने चुनाव लड़ा कि राज्य के मुख्यमन्त्री आप ही बनेंगे, इससे कोई इंकार नहीं कर सकता।"

"नहीं···नहीं। मैं तो नहीं ही कह रहा था। पर हायकमांड सुनता ही नहीं···ऐसा लगता है बेटों को मेरी ही गरज है।"

"आप समान कृर्तत्ववान व्यक्ति इस इलाके में कहां है? और बरार पर तो हमेशा ही अन्याय होता आया है। आगामी मुख्यमंत्री बराबर का होना ही चाहिए। इसके बिना इस इलाके का विकास नहीं हो सकता। आप मुख्यमन्त्री बन गए कि हमारा भी काम जादू की लकड़ी घुमाने-सा सहज हो जायेगा।"

"देखेंगे ! भगवान की क्या इच्छा है···कौन जानता है क्या होगा !" वे अपनी उंगलियां नचाने लगे।

जाते समय प्रिंसिपल से साहब सिलेक्शन के बारे में फिर बोल गए···"आऊंगा···आऊंगा, मुझे आना ही चाहिए" कहते हुए उन्होंने प्रिंसिपल साहब को आश्वस्त किया।

सुबह ग्यारह बजते ही झोटिंग पाटिल प्रिंसिपल साहब के चेंबर में उन्हीं की कुर्सी पर बैठ गए। टेबल की दायीं ओर फैक्टरी के मैनेजर गद्रे थे···बायीं ओर प्रिंसिपल साहब। सामने की कुर्सी कंडिडेट के लिए रखी थी। दीवार पर बड़ी घड़ी थी। महात्मा गांधी का हाथ जोड़ता हुआ फोटो था। उस पर कभी पहनाया हुआ हार सूख चुका था।

एक-एक कँडिडेट आता। वही प्रश्न पूछे जाते···नाम ? शिक्षा कितनी ? रुचि के विषय ? यहीं नौकरी क्यों करना चाहते हैं ?

पहला कंडिडेट क्लप डोअर धकेल कर बाहर जाते ही झोटिंग पाटिल मैनेजर गद्रे से बोले—"देखा गद्रे साहब, इसके तो नाक की मक्खी नही उड़ती ! क्या पढ़ाएगा ! और बोलता कैसा है ? ग्रामोफोन के पोंगे सा···। सिर खुजाते-हंसते हुए गद्रे बोले,···सही है साहब। चेहरे पर जैसे प्रेत-छाया हो, समझ में नहीं आता इंटरव्यू को आया है या शोकसभा में।"

"आजकल के जवान लड़कों को क्या हो गया ? बिल्कुल दम है ही नहीं उनमें···? पहले तीन पर विचित्र टिप्पणी देते हुए झोटिंग पाटिल ने उन्हें रास्ते लगा दिया।

फिर एक युवती आई। केश बॉब···आंखों पर मॉड चश्मा···स्लीवलेस ब्लाऊज···बाटिक सिल्क की साड़ी···ओठों पर लिपेस्टीक का हल्का रंग···नीचे से ऊपर तक सब मैचिंग मैचिंग···उसने हँसते हुए सबको नमस्कार किया। झोटिंग पाटिल ने उन्हें हाथ से ही कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। पल भर उन्हें लगा इतनी फैशन-परस्त लड़की सिनेमा में अच्छी फबती।

"क्यों वो बाई ? कहीं विदेश पढ़ने गई थी क्या ?" उनके प्रश्न से उसे आश्चर्य हुआ। भाषा का भी। किसी अनाड़ी को कुर्सी पर बैठा तो नहीं दिया गया ? या ये लोग मेरी मजाक कर रहे हैं। उसकी समझ में नहीं आ रहा था। मॉड चश्मे के पीछे उसकी आंखें फड़फड़ायी। स्वयं को संभालते हुए उसने कहा।

"मैं विल्सन में थी।"

झोटिंग पाटिल ने प्रश्नार्थक मुद्रा में प्रिंसिपल साहब की ओर देखा। विल्सन यह लन्दन जैसा ही कोई गांव विदेश में होगा। ऐसा उनका ख्याल था। प्रिंसिपल साहब ने उन्हें बताया, "साहब बम्बई में ही चौपाटी पर कॉलेज है। अच्छी रेप्युटेशन है उस कॉलेज की।"

"रेपुटेशन···? हां···हां···समझा···इज्जत की स्कूल है···ठीक है न बाई ?" उसकी ओर देखते रहे। फिर मैनेजर साहब से बोले, "गद्रे साहब तुम्हीं कुछ पूछो।"

उन्होंने कई प्रश्न पूछे। उन्हें लड़की स्मार्ट लगी। हाजिर जवाबी थी। जब वह गई तब उन्होंने झोटिंग पाटिल को बताया—"साहब यह लड़की बहुत होशियार है। डबल एम० ए० किया है इसने। डाक्टरेट कर रही है···।

"डाक्टरेट याने क्या ?"

"आगे पढ़ाई···प्रबन्ध अर्थात् निबंध पर···बहुत बड़ा निबंध। अपनी बात साधार स्पष्ट करनी पड़ती है। उसे डाक्टर कहते हैं···।"

"वे दवाई बेचने वाले भी डाक्टर···और ये भी डाक्टर ! गफलत ही है सब । ब्रिटिश लोगों की शिक्षा पद्धति कितने दिन हमारे देश में हम चालू रखेंगे ?

बीच में ही हंसते हुए प्रिंसिपल साहब से बोले—"साहब आप केन्द्र में चुने गए कि सब बदल जाएगा ।"

"केन्द्र ? वह तो बहुत दूर है···पहले राज्य को तो देखो ।"

"राज्य के चुनाव तो आपके हाथ का मैल है···

"मुझे लगता है हम कंडिडेट का चुनाव करने के लिए बैठे हैं न···तो मैं क्या कह रहा था मैनेजर साहब । ह···ह···इस लड़की के बारे में आप कुछ बता रहे थे, न ?"

"हां, साहब । उसके डाक्टरेट का विषय है", "पारम्परिक विरासत और शिक्षा···"

"उस लड़की को परम्परा की विरासत तो है नहीं, मास्टर···अब शिक्षा होगी···लड़की पसन्द है आपको ?"

"ठीक है ।"

"परन्तु अपने को कालेज में पढ़ाने के लिए चाहिए । कल वह गांव में आएगी तो कॉलेज के लड़के क्या उससे पढ़ेंगे ? यहां सिनेमा शुरू हुआ समझिए । बम्बई की हीरोइन और आपके गांव का हीरो···और फिर···" । गांव के सभी होटलवाले रेकार्ड पर वहीं गाना बजाएंगे । इस गुड़िया को देखते रह जाएंगे । एक भी लड़का पास होने से तो रहा···झोंटिंग पाटिल के इतना कहने पर किसकी क्या मजाल है कि कोई उसे चुनने को कहे । बेचारे मैनेजर चुप रह गए । प्रिंसिपल साहब को मन में लगा कि साहब को आने के लिए आग्रह कर नाहक गलती कर ली । एक बात हुई। इस निमित्त साहब की कृपा-दृष्टि हुई । देखते-देखते दोपहर के दो बज गए । झोंटिंग पाटिल ने छहो कंडिडेट अयोग्य घोषित कर दिए । पैंतीसेक साल की विधवा बाई उन्हें कुछ ठीक लगी । उनका आंचल सिर तक था । पानीदार चमकीली आंखें थीं । सफेद शुभ्र सूती साड़ी उन्होंने पहन रखी थी । पति के मरने के बाद उन्होंने पढ़ाई शुरू की । सिर्फ इंटर थी । उम्र के तीसवें साल में उन्होंने बी० ए० किया और तीन साल बाद एम० ए० किया । इस दौरान छोटी-बड़ी नौकरियां भी कीं । समाजसेवा की । प्रौढ़ शिक्षा में भी किया । फिर शहर की गर्ल्स स्कूल में शिक्षिका का काम किया । एक लड़की है, वह दादा के पास पढ़ रही है ।

अपनी निर्णायक राय उन्होंने इस बाई के विषय में नहीं दी थी···उसे देखते ही उनके जीभ पर मिश्री घुल रही थी । वहीं उन्हें कहने को मिल गया—"बाई खानदानी लगती है ! क्यों प्रिंसिपल साहब ? सिर पर आंचल देखकर क्या लड़के आदर नहीं करेंगे ?···अच्छा, और कितने लोग बचे हैं ?"

"अब सिर्फ एक ही कंडिडेट बचा है । इतना निपटकर आप अपना निर्णय दें ।"

"निर्णय ?···उनके मन ने तो निर्णय ले लिया था । पर वह किसी पर प्रकट नहीं होना चाहिए । उनकी आंखों के सामने भावी सपना आया—मान लीजिए हम मुख्यमंत्री हो गए तो सभा-भाषणों को मदद और साथ भी लगेगी । भाषण तैयार करना···गांव-गांव घूमना···उसमें बाई गरीब, विधवा और असहाय । उनकी आंखें गांधीजी के फोटो की ओर घूमी थीं ।

उनकी भी महानता, उनके नेतापन को संभालने के लिए दोनों ओर दो लड़कियां थीं न ? उनके ऊपर किसी ने शक किया ? जनसेवा में यह आवश्यक ही है न ! आधी उम्र की विधवा

और साठवें की ओर झुकता हुआ मैं···शंका के लिए जगह ही कहां है। उनकी जीभ पर मिश्री घुलने लगी। पर यह किसी पर व्यक्त नहीं होना चाहिए। इसलिए सातवें कंडिडेट पर प्रश्नों की बौछार करके मुक्ति पाने की बात उन्होंने सोच ली।

बीच में ही प्रिंसिपल साहब ने चाय मंगायी। झोटिंग पाटिल ने चाय बिल्कुल नहीं पी। बोले-सिर्फ एक लौंग दीजिए।

—अब लौंग कहां मिलेगी। चपरासी को भगाया गया। कुछ मिनटों में ही चपरासी आया। उसने हथेली पर लौंग इस प्रकार रखी थी ज्यों संसार की एकमेव मुक्ता उसने सामने रखी हो।

लौंग के सिरे को दांत से काटकर मुंह में डाल लिया। बोले—बुलाइए ! अगले कंडिडेट को बुलाइए।

फ्लप डोअर खींचकर एक युवक भीतर आया। व्यवस्थित पैंट, शर्ट, आंखों पर चश्मा। गर्दन तक लौटते भरपूर बाल, मोटी मूंछ, गेहूंआ रंग, उसकी आंखों की चमक कुछ और ही थी। सिर झुकाकर उसने तीनों को प्रणाम किया। उसके हाथों में एक फाईल और दो किताबें थी।

प्रिंसिपल साहब ने उसे बैठने को कहा "हां ! किस गांव के आप ?" झोटिंग पाटिल उसकी आंखों में झांकते हुए बोले।

"नागपुर का···।"

प्रिंसिपल साहब ने उसके प्रार्थनापत्र की जानकारी चेअरमन साहब को दी। "साहब इतनी कम उम्र में देवदास ठोसर ने, उन्होंने कंडिडेट की तरफ क्षण भर देखा, मराठी साहित्य में सम्मान का स्थान प्राप्त कर लिया है···।"

"याने···साहित्य किसे कहते हैं ?"

"जो लिखा जाता है वह साहित्य···जैसे कहानी, उपन्यास, निबन्ध, कविता आदि···"

"बनिया की खाता बही लिखी जाती है,—वह भी साहित्यरूप है क्या ?"

बीच में ही उसे रोकते हुए देवीदास ठोसर ने कहा, "साहित्य यह जीवन का प्रतिबिम्ब होता है, बनिया लिखता है, उसे हिसाब कहते हैं।"

"एक-एक बात बताइए—साहित्य में सम्मान का स्थान अर्थात् आपने ऐसा क्या किया है ?"

"मैंने, मेरे आसपास की वास्तविकता को शब्द दिए। दीन, दुखी, दलितों की यातनाओं को, दुखों को वाणी दी···मैं कविता लिखता हूं।"

"कविता याने···गाना ?"

"नही, कविता यानी कविता।" हृदय पर अंगुली रखकर उसने कहा—"वह यहां जन्म लेती है। आत्मा का हुंकार होती है। वह गायी ही जाए, ऐसा नहीं है। गेयता और लय ये कविता के आवश्यक अंग हैं फिर भी इनके कारण उसकी सीमाएं बन गई थीं। नई पीढ़ी ने उसे इन बन्धनों से ही मुक्त कर दिया।"

"अरे भई ! पर तुम्हें मालूम नहीं···वीररस के एक गीत से कैसा खून खोलने लगता है। ठुमरी गायी गई कि मन नागिन के समान डोलने लगता है। भजन से सिर भगवान के सामने हिलने लगता है। वैसे कविता पढ़ने से क्या होता है ?"

"जितना भी आपने कहा वह सब कविता से होता है।"

"अच्छा ! यदि ऐसा है तो कबिता बड़ी चीज़ है।"

"मेरी कुछ कविताएं जर्मन भाषा में अनुवाद भी हुई हैं।"

मैनेजर और प्रिंसिपल उसकी ओर आश्चर्य से देखने लगे।

सामने बैठा हुआ युवक उन्हें काफी पोटेन्शीयल लगने लगा। लेकिन झोटिंग पाटिल असमंजस की स्थिति में आ गए। बोले—"मराठी का जर्मन में जाना कैसा हो सकता है ? मराठी का शब्द, मराठी का ही होना चाहिए।"

प्रिंसिपल साहब बीच में ही बोल पड़े, "संभव है साहब ! हमारे अनेक संस्कृत के ग्रन्थ जर्मन अपने देश में ले गए। उनका अनुवाद किया। देवीदास ठोसर के कविता संग्रह की समीक्षा भी एक अंग्रेजी दैनिक में पिछले दिनों मैं देख पाया। इन्होंने कविता की किताब लिखी है।"

"फिर इन्हें नौकरी करने की जरूरत है क्या ?"

"साहब अब तक आप जैसे रसिक लोग कविता नहीं पढ़ते। आप जैसे दयालु दानशूरों का आश्रय कविता को नहीं मिलता। इसलिए पेट के लिए उन्हें नौकरी करनी ही पड़ती है।" देवीदास ठोसर बीच में ही बोला।

अपनी तारीफ सुनकर झोटिंग पाटिल गालों में ही मुस्काए। बोले—"लड़का होशियार लगता है। बाप क्या करता है ?"

आकाश की ओर उंगली बताता हुआ देवीदास बोला "वह तो उनके घर चला गया।"

"अरे...अरे..." पाटिल करुण हो गए। "मां क्या करतीं है ? जिन्दगी है कि..."

"हां, भगवान की दया से ज़िन्दा है। उसकी कृपा से वह सारी जिन्दगी पिस रही है। अभी भी उसके भाग्य की यातना समाप्त नहीं हुई। आज भी वह बर्तन मांजती है।"

वे अवाक् उसकी ओर देखने लगे। कभी उनकी मां ने भी बर्तन मांजे थे। बर्तन मांजकर उन्हें पढ़ाती थी। पर दूसरी कक्षा में रहते ही वह मर गई और वे मजदूरी करने लगे।

"उसने तुम्हें बर्तन माँजकर पढ़ाया ?"

"वैसे मैं भी बचपन से ही पढ़ने तक के लिए कुछ न कुछ काम करता रहा...मैं अखबार बेचता था।"

प्रिंसिपल ने पूछा—"इसके पहले कहां काम पर थे ?"

"एक अखबार के ऑफिस में प्रूफ देखने का काम करता था। प्रेसवाले सारा काम करा लेते। खुद ऊंघते रहते। सोते थे। आधे से अधिक पेपर की सामग्री मैं ही लिखता।"

"फिर उन्होंने आपको वहां नौकरी नहीं दी ?" मैनेजर।

"मुझे कैसे रखते वे वहां ? टेम्परेरी चपरासी की जगह मेरी नियुक्ति की। सभी लोग —सम्पादक, उप-संपादक प्रेस के मालिक के रिश्तेदार थे।"

"प्रेस का मालिक कुछ काम-धाम करता था क्या ?"—पाटिल।

"सिर्फ नोट गिनता था। पढ़ा-लिखा तो था नहीं, पर पैसे गिनने आते थे।"

"बिना पढ़े लिखे वह पेपर चलाता था ?"

"उसमें है ही क्या ?"

उसके प्रश्न ने झोटिंग पाटिल को सोचने पर मजबूर किया। उसमें क्या रखा है...? कंडिडेट के बाहर जाते ही वे बोले, "लड़का बहुत होशियार है, पर पढ़ाने का अनुभव नहीं। मुझे लगता है यह लड़का काम का नहीं है...।"

प्रिंसिपल साहब बोले…"मुझे लगता है इस लड़के में काम करने की लगन है। संघर्षशील है और विशेष बात यह—स्वावलम्बी है। यदि इस प्रकार की वृत्ति-प्रवृत्ति आपने पाल ली तो कल को आदर्श बनाने का श्रेय आपको मिल जाएगा।"

"हूंह ! सोचना चाहिये…" कहते हुए वे उठे और चलने लगे। बाहर उनकी एम्बसडर गाड़ी खड़ी थी। प्रिंसिपल साहब ने दरवाजा खोला। उन्होंने शरीर झुकाकर भीतर ढकेल दिया। मैनेजर साहब से बोले—"चलिए कारखाने तक छोड़े देता हूं।"

मैनेजर भी उनके साथ पीछे बैठ गए। ड्राइवर ने एक्सीलेटर पर पैर रखा और स्टीअरिंग घुमाया। कार ने गति ली।

कारखाने के गेट पर उन्हें छोड़ते हुए झोटिंग पाटिल बोले—"आप भूलेंगे नहीं ? आप समझदार हैं। बाई की सिफारिश आप कर रहे हैं तो कुछ-न-कुछ करना ही पड़ेगा।"

"साहब…आप दयालु हैं। आपकी कृपा से कितनों की जिन्दगी का उद्धार हो गया है। वह बेचारी असहाय है। एक गरीब विधवा को सहारा देने का पुण्य आपको मिलेगा।"

"मैं नहीं भूलूंगा। पर आप भी मत भूलिए, हूं !"

इशारों की बातों से उन्होंने कुछ कहा। और उन्हें पीछे छोड़कर कार मुड़कर आगे चली गई। काफी समय तक मैनेजर साहब आगे बढ़ते हुए कार की ओर हाथ हिलाते रहे। झोटिंग पाटिल अपने प्रशस्त दीवानखाने में जाकर मोटे तकिये के सहारे पसर गए। छत पर झुंबर लगे हैं। दीवालों के दोनों ओर मसाला भरे हरिण के सिर लगे हैं, फर्श पर सिर समेत बाघ का चमड़ा बिछा है। दरवाजे की दिशा में मुंह फाड़कर बाघ बिछा है।

बाहर अंधकार भर गया है।

इतनी भव्य इमारत में वे अकेले रहते हैं। कहने को उनका ईमानदार नौकर पीछे आउट हाऊस में रहता है—गबा। पिछले पैंतीस साल से वह परछाई की तरह अपने मालिक के अस्तित्व से चिपका हुआ है।

घड़ी पर एक का ठोका पड़ते ही उन्होंने घड़ी की ओर देखा। साढ़े आठ बजे थे। इस ठोके के बाद झोटिंग पाटिल किसी से भी नहीं मिलते। उन्होंने अलिखित नियम ही बना लिया था। आसपास सब लोगों को मालूम था कि साहब नौ बजे सो जाते हैं। एक गबा ही था जो मालिक के सोने तक न सोता।

गबा ने स्टूल पर सब कुछ रख दिया—एक गिलास, एक बोतल और एक लोटा पानी …प्लेट में घी में तले नमकीन काजू और पिस्ते।

एक ठोका घड़ी पर लगते ही झोटिंग पाटिल को लगता कि उनके खून की बूंद-बूंद से आक्रोश टपक रहा है। उनके रक्त में भूखे गुलाम से कुछ जीवाणु किलबिलाने लगते। चिल्लाने लगते। फिर वे व्याकुल हो जाते। गबा मालिक का यह समय निश्चित समझता था।

एक पेग पेट में जाते ही उन्हें हल्का-हल्का और फ्रेश लगता। ऊपर के बल्ब के प्रकाश की किरणें दीवाल के हरिणी की आंखों से परावर्तित होकर सीधी कांच के गिलास में गिरती…। झोटिंग पाटिल मन-ही-मन इस संयोग को 'ज्योति योग' कहते। क्षण भर में उन्हें लगता मैं ज्योति किरणें और चैतन्य पी रहा हूं…फिर कभी वे हरिणी की आंखों में देखते…गाढ़ी नीली आंखें…उन्होंने कितना ही शिकार किया है…पर हरिणी की आंखें कैसी डरी-डरी रहतीं। उसमें भय सिमटा रहता। घड़ी में नौ ठोके पड़े। उन्होंने एक पेग फिर तैयार किया। बूंद-बूंद

घोलते, एक-एक काजू चबाते नीचे बिछाए बाघ की शिकार उन्होंने कब की याद करने लगते। एक भयानक दहाड़ उनके कानों में कौंधी थी और वे आज भी उस भयानक आवाज की याद से घबरा जाते। गटागट उन्होंने गिलास खाली कर दिया। अब कहीं उन्हें कण-कण से फूटने का एहसास हुआ। ऐसा लगा···उसमें क्या है ?···प्रश्न उनकी ओर फेंका गया। क्या संघर्ष था लड़के का···वे अकेले ही हंसे। लड़के को प्राध्यापक होना है। अरे क्या रखा है उस प्राध्यापकी में ?···मैं तुम्हें संपादक बनाऊंगा, उसमें क्या है ? कहा था···आज तूने बहुत बड़ा रहस्य बताया है···यहां सब कुछ है···एक अपना पेपर ही नहीं है···चलो वह भी शुरू हो जाएगा।

दीवाल की हरिणी पर उनका ध्यान गया···अंगूठी के नीलम मणि सी आंखें···चमचम चमकने वाली और अचानक जीभ पर मिश्री···गाढ़ी नीली आंखें···बाघ की उन्मत्त भयानक दहाड़···सारे जंगल में सनसनाहट फैली···घना जंगल, झिंगुरों की किर्राहट···जंगल में रात की शाँति···डर···अनिश्चितता···अंधेरे के उस पार आंखें देखती हैं···और अंधेरे में चमचम दो आंखें चमकती हैं···हरिणी की आंखों का डर···बाघ की भयानक दहाड़ की भूख···लपलपाती जीभ···जंगल के सूखे पत्तों की चर्राहट···सूखे पत्तों पर चलने की आवाज···हवा मस्ती में बहती है···आकाश सम्पूर्ण ऐश्वर्य में मस्त है···कभी नहीं दिखते इतने सारे तारे···आँखें··· भयानक दहाड़···घड़ी में दस ठोके पड़ते हैं।

···और झोटींग पाटिल साढ़े तीन पेग के बाद उस दीवान खाने में जंगल का अनुभव करते हैं। शिकार का अनुभव करते हैं···उनके कानों में सूखे पत्तों की सरसराहट है···सूखे पत्तों पर पैरों की आवाज···रात का अनामिक स्पन्दन···निरन्तर उलट-पलट कर आंखों के सामने घूम रहे हैं···सामने का बड़ा दरवाजा···लगता है खुल गया है···जैसे क्षितिज पर एक नन्ही-सी प्रकाश रेखा दिखने लगती···वह दिखती है···घुलती है···गबा क्षितिज पर लगता है, गबा खड़ा है···हाथ बांधकर···सिर झुकाकर···प्रकाश रेखा घुलती है। क्षितिज घुलता है··· फिर अंधकार में खोया मन···पेड़-पेड़ के पत्ते-पत्ते से बहाने वाली भयानक मस्त हवा···हरिणी की भयभीत आंखें···बाघ की भयानक दहाड़···अंधेरी रात···और फिर फटा हुआ क्षितिज··· वहां एक इत्ता-सा मिट्टी का दिया जलता है···ज्योति हवा के झौंके से फड़फड़ाती है···दरवाजा खुलता है···बंद होता है···क्षितिज फटता है···एक दीया···और क्षितिज पर एक बिन्दु··· सफेद···आगे सरकने वाला···सफेद शुभ्र आकार···उन्होंने फिर गटक् से गले के नीचे उतारी ···घड़ी में ग्यारह का समय गुजरा था···सिर पर घूंघट···सफेद···शुभ्र साड़ी···दीया···आगे आगे आने वाला···और अब वह आकार दो हाथ की दूरी पर···जंगल भयंकर भयानक··· भीषण सरसराहट···सिर्फ उतनी आंखें ही चमकी···जैसे अंधेरे में भी हरिणी की चमके···सब भुला देने वाली आंखें···उन आंखों में चेतन्य···पानी पानी···और पल भर में उन्हें लगा वे उस पानी के समान पारदर्शक हो गए हैं···शराब की एक बूंद से···एक बिंदू···जंगल में बारिश होने लगी···नगाड़े बजने सी आवाज···भय व्याकुल हरिणी सहारे के लिए भागती हुई···हवा··· हवा की सरसराहट पानी में घुल गई···अब हरिणी की आंखें भयभीत नहीं हैं···भाव व्याकुल हैं ···और सब कुछ वहीं जम गया सा···दीवाल की हरिणी का मुंह, फर्श पर बिछे बाघ का सिर समेत छाला···जंगल में हवा थम गई। बारिश रुकी···सरसराहट थमी···अब कोई आवाज नहीं···प्रकाश नहीं···और कहीं एक अनंत अन्तराल से एक क्षीण आवाज···सृष्टि के निर्माण के समय थी वैसी ही आवाज आई···मैं आई···मैं आई···मैं···मैं···और फिर अंधेरे को ही

दागने-सा सिर्फ श्वास, नि:श्वास···जीभ पर मिश्री। सुबह उन्होंने आंखें खोलीं, तब तक काफी उजाला हो चुका था। गबा ने रात को कभी उन पर रजाई ऊढ़ा दी थी। उन्हें लगा, रात कहीं कोई स्वप्न तो नहीं देखा···मैं, और ऐसा सपना मिश्री सा···मीठा···मीठा···।

रोज की अपेक्षा आज उन्हें तैयार होने में कुछ समय लगा। प्रिंसिपल साहब और मैनेजर साहब कब के आकर बैठे थे। बगीचे की कुर्सियों पर ही वे बैठे थे···।

धीरे-धीरे कदम बढ़ाते मंद-मंद मुस्कराते वे बगीचे में आए . दोनों खड़े हो गए। हाथ जोड़कर प्रणाम किया। फिर सभी कुर्सियों पर बैठ गए। प्रिंसिपल साहब बोले—"साहब उस लड़के के बारे में क्या सोचा है आपने ?"

"लेना है उसे, उसका संघर्ष कीमती है।"

मैनेजर झोटिंग पाटिल के वाक्यों से विचलित हुए। विचार अस्थिर हो गए। प्रिंसिपल साहब के पास वह विषय कैसे रखता। उनकी असमंजस झोटिंग पाटिल के ध्यान में आ गई। उन्होंने तो साहब की इच्छा के अनुसार ही सब किया था।

"मैनेजर साहब, घबरा गए क्या ?···एक असहाय विधवा को हम सहारा नहीं देंगे तो कौन देगा ? उसे कालेज में लिया गया समझिए।"

प्रिंसिपल साहब के सामने एक प्रश्न उपस्थित हुआ। एक जगह के लिए दोनों का चुनाव कैसे किया गया ?

प्रिंसिपल साहब आप भी घबरा गए ? उस लड़के को मेरे पास भेजिए···मेरे मन में छापाखाना खरीदने की बात है। देवीदास ठाकुर ही है न उस लड़के का नाम···वह प्रेस का पूरा काम देखेगा···और महाराष्ट्र के सम्पूर्ण अखबारों में विज्ञापन देना मत भूलें। दशहरे के मुहूर्त पर चिमखड़ी से पेपर निकलना चाहिए···।

प्रिंसिपल का चेहरा खिल गया।

"साहब गरीब के प्रति कितनी करुणा है आपके मन में।"

"प्रिंसिपल साहब, उस विधवा लड़की की रहने की व्यवस्था कीजिए। उसे किसी बात की कमी नहीं होनी चाहिए। अकेली है बेचारी।"

"साहब, वह मेरी जिम्मेदारी है···।"

प्रिंसिपल साहब गए। तब मैनेजर गद्र साहब को बता रहे थे—"साहब, शक्कर का उत्पादन दस प्रतिशत बढ़ गया है।"

फिर बोनस दे दीजिए सभी कामगारों को और आपके प्रमोशन की व्यवस्था मैं करता हूं···मेरे ध्यान में यह बात है।"

वे मंद-मंद हँसे। मैनेजर गए तब भी वे हंसते ही रहे। आज का दिन उन्हें बहुत ही मोहपूरित लगा···जीभ पर मिश्री घुल रही थी और रात को देखा सपना याद आ रहा था—वह सपना था या···

हौलदार

□ प्रभा उतप्रेती

वह हौलदार था। हमेशा पिये हुए सा लगता था, या पिये ही रहता था। उसके सामान्य जीवन के बारे में मुझे ज्यादा नहीं मालूम। पर बहुत जल्दी-जल्दी ठहाकों में वह बोलता था। उसकी गर्दन तेजी से हिलती डुलती रहती और बिना किसी को मौका दिये वह लगातार बोलता रहता। आपसे बहुत से सवाल जल्दी-जल्दी करेगा और उतनी ही जल्दी आपका इंतजार किये बिना खुद ही जवाब देना शुरु कर देगा। और बीच में कभी अपनी रौ में ही उंगलियों से आपको गुद गुदा भी देगा। हर हंसी के साथ वो गुदगुदी भी आपको लेनी पड़ती थी। सफ़दर को तो उसे देखते ही सारे शरीर पर गुदगुदी छा जाती थी।

एक दिन मैं और सफ़दर चाय के एक होटल में बैठे थे। तभी एक जोरदार आवाज पीठ की तरफ से आई—"नमस्कार बिष्ट जी"···मैंने व सफ़दर ने इधर-उधर, बायें-दायें देखा। क्योंकि न मैं बिष्ट था न वो। पर पुकारने वाला अनुराग भरी आंखों से हमें ही देख रहा था। उसने सामने की कुर्सी खींच ली और मुझे सम्बोधित करते हुए धारा प्रवाह शुरु हो गया—"और बिष्ट जी, क्या हाल-चाल हैं? कई सालों बाद आप दिखाई दिये। परसों मैं आपके गांव की तरफ गया था, आपके पिताजी भी मिले थे, मुंशीराम जी···"। मैंने उन्हें रोकने का प्रयास किया कि न मैं बिष्ट हूं न मेरे पिताजी का नाम मुंशीराम है। पर उन्होंने मेरी चलने ही नहीं दी। बस बोलते रहे,"···अरे सुनिये तो, वैसे आप बड़े आदमी ठहरे साहब। कहां राजा भोज कहां गंगुआ तेली। हम तो पुलिस के तीन कौड़ी के सिपाही। इस हरामजादी नौकरी में जहां मादर···।" फिर अपने विभाग को उन्होंने इस तरह गाली देनी शुरु की कि कान का बरसों का मैल शरमा गया—"लोग कहते हैं हम करप्ट हैं। पुलिस वालों को देखकर थूकते हैं। कुत्ते कहते हैं हमें। पर जरा अपने इन नेता भाइयों को देखो···।" फिर शारीरिक सम्बन्धों वाली गालियों का भी प्रयोग हुआ। "अपनी नौकरी की शुरुआत में साहब मैंने एक जुआरी को धर पकड़ा। फिर क्या था नेताओं से लेकर एस० पी० तक के फोन घनघनाने लगे। सब मुझ पर चढ़ बैठे—उसे क्यों

पकड़ा ? अब उस···पे मुहर तो लगी थी नहीं। सारा का सारा बोझ मुझ पर। तो साहब ऐसी थूकाफजीहत हुई कि पूछो मत। उस समय खासा नौजवान था। दस-दस को धर लेता था। पर वो साला जुआरी (अपनी···) नेता का भांजा था। छोड़ने की बात ऊपर से आई। दारोगा मुझसे पंगे लेने लगा। उठा के फेंक दिया साले को। फिर साहब लाइन हाजिर होना पड़ा। नौकरी से नहीं निकला क्योंकि बात अखबार तक आ गयी थी। पर साहब फिर भी अड़ने की मेरी आदत नहीं छूटी। आज अठारह साल की सर्विस के बाद, जब रिटायर होने के चार साल बाकी हैं, तब हौलदार बना हूं। वो भी एक एस० पी० साहब की मेहरबानी से। वो भी मेरी तरह दिमाग के फुन्तरू थे, जिन्दगी भर एस० पी० के एस० पी० रहे।" फिर वर्तमान में लौटते हुए उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ मारा और शुरु हो गये, "आपके पिताजी मुंशीराम जी की दुकान में मेरा बहुत पहले से बैठना था। मेरे दोस्त हैं पक्के। बड़ी अच्छी घुटती थी उनसे। आप उस समय बहुत छोटे थे, कई बार पेशाब की है आपने मेरे ऊपर···।" वह पेशाब को वात्सल्य से जोड़कर वात्सल्मय हुए मुझे देखने लगे। फिर बोले, "अब तो साहब आप बड़े आदमी ठेरे···।" उन्होंने यह ऐसे कहा मानो बड़े होकर मैं वैसा करने से वंचित हो गया हूं। मैं बार-बार प्रतिवाद का प्रयास करता रहा कि मेरे पिता तो शिक्षा विभाग में रहे, दुकानदारी नहीं करते थे, और ना ही उनका नाम मुंशीराम था। पर वह मुंशीराम जी, उनकी दोस्ती और मुझसे पुराना सम्बन्ध बनाये रहे।

अब उनका ध्यान गौर से सुन रहे सफ़दर पर गया। उसे भी वह पहिचानने की नजर से देखते हुए बोले, "आप···कौन हैं साहब ?" मैंने चुटकी लेते हुए कहा—"पत्रकार हैं ये···", ये सुनते ही उन्हें खुशी का झटका लगा। तुरन्त उठकर सफ़दर का हाथ अपने हाथ में लेकर बुरी तरह झकझोड़ते हुए बोले, "ओ-हो-हो···हो, थपलियाल जी ?···थपलियाल जी ! में समझ गया, समझ गया···। अरे पहचाना मुझे ? आपके पिता सुरेशानन्द जी से भी मेरी खूब पटती थी। आ-हा-हा···क्या आदमी थे वो ! अब कहां वो बात साहब ? ! आ-हा-हा···। चलिये साहब खानदान बड़ी चीज है। अब देखिये आप पत्रकार हैं, पर ये शालीनता ! वरना पत्रकार भी साले खाऊ ब्लैकमेलर होते हैं। पहिले चिड़िया कागू खाते हैं, फिर···।" सफ़दर हँसा, पर अप्रत्याशित हमले से विचलित-सा हो गया था थोड़ी देर के लिए। पर हौलदार जी थे कि बोले जा रहे थे—"इस हिन्दुस्तान में तो साहब डन्डा चाहिए। डण्डा चलाओ ताला खोलो। यहां तो साहब बिना बम···", हमने सोचा कि हवलदार जी के हिन्दुस्तान में बम डालने से पहले हम भी उठ लें वरना···इमरजेंसी के दिन थे ही।

फिर काउंटर में पैसा देने गये ही थे कि हौलदार साहब चाय की प्याली सहित काउन्टर में चिल्लाते हुए दौड़े चले आये, और होटल वालों को धमकाने के अंदाज में बोले, "खबरदार इनसे एक पैसा नहीं लेना,···बोलो···कितने हुए ?" उस दिन हमने अच्छी खासी दावत उड़ाई थी, बिल पन्द्रह रुपये से ऊपर था। उन्होंने एक तगड़ा पत्ता मारा। हमने कितना ही उन्हें रोका, पर वो कान में हाथ लगाकर जीभ काटते हुए बोले, "बाप रे बाप, पाप लगायेंगे क्या ? मेरे रहते आप पैसा देंगे ? मुंशीराम, सुरेशानन्द जी के बेटे हैं आप ! मेरी ड्यूटी है ये। मेरे होते पैसे कैसे दे देंगे ?···" फिर उन्होंने सेल्यूट मारी, और हम अनजान, अदृश्य मुंशीराम, सुरेशानन्द जी को धन्यवाद देते और अपने नये नामों को संभाले हुए निकल लिए।

फिर हौलदार जी हमें यदाकदा मिलते रहते थे। उनकी गलतफ़हमी भी दूर करने की कोशिश की, पर वो कभी हमें सुनने को तैयार नहीं रहे। एक बार सफ़दर से कहकर उन्होंने

शायद अपना कोई काम भी कराया। सफ़दर के पहिचान का क्षेत्र भी विस्तृत था। हौलदार जी भिड़न्तू आदमी थे, अपने विभाग से भिड़ते ही रहते थे। ग़लत बात कम सहन करते थे। सो एक दिन सफ़दर से अपने प्रति हुए अन्याय को अखबार में देने को कहा। पर सफ़दर ने उच्चाधिकारियों से मिल-मिलाकर काम करा दिया, तो हौलदार जी बड़े प्रसन्न हुए। एक दिन हम दोनों को रास्ते में मिले। मिलते ही बोले—"आइए साहब जरा थाने चलें। ज़रा सी खातिर करने दें," उन्होंने उँगलियों की माप दी और मुस्कुराये, "अच्छा माल है साहब, ऐसी वैसी नहीं दूंगा आपको"। हमने मना किया कि हम नहीं पीते हैं, तो आश्चर्य, दुःख, श्रद्धा के भाव साथ-साथ उनके चेहरे पर तैरने लगे। निराश होके बोले, "···अरे···, मैं तो समझ रहा था आप दोनों···। क्योंकि···मुंशीराम जी से दोस्ती थी···वो तो···।" फिर उन्होंने विवश नहीं किया। सफ़दर से मैंने कहा, "यार एक दिन इसका भ्रम दूर कर दें कि न मैं बिष्ट हूं न तुम थपलियाल।" लेकिन सफ़दर ने कहा, "बेकार है। अपनी बनाई हुई हमारी इमेज के अनुसार उसे हमसे प्यार व इज्ज़त मिलती है। क्या पता वह इस भ्रम को अन कांन्शस(अवचेतन) में बनाये ही रखना चाहता हो। प्यार का भूखा है न वो। भला आदमी जिंदगी-भर ग़लत जगह फंसा हुआ···।"

हौलदार जब भी मिलते थे, हमेशा पूरे जोश और ज़िंदादिली से मिलते, और ये कहना न भूलते, "कभी हवालात आइए साहब, कभी हमें खातिर का मौका दें···।" सफ़दर कहता, "क्या किस्मत बुलन्द है यार! खातिरदारी भी कहां आफ़र की जा रही है—हवालात में।" सफ़दर को भी जब हौलदार साहब मिलते, उसके सारे शरीर में गुदगुदी होने लगती।

समय बीता। सफ़दर मारा गया। एक दिन मैं किसी बस से जा रहा था, और एक स्टेशन पर उतरा, कि एक गाड़ी से ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने की आवाज़ आई, "बिष्ट जी, ओ बिष्ट जी···।" रुका, इधर-उधर देखा तेज़ी से वही हौलदार साहब एड़ी चटकाते हुए बोले,"नमस्कार बिष्ट जी···" फिर अपनी बस में चढ़ने से पहले वो बिना रुके धारा प्रभाव अपनी दास्तान सुनाते रहे। वे रिटायर हो चुके थे। बड़ा हंगामा कर उन्होंने अपना जी० पी० एफ० ठीक कराया था। बहुत खुश थे कि उनके लड़के की नौकरी लग गई, वह पटवारी बन गया था फिर चलते-चलते उन्हें याद आई, उन्होंने पूछा, "और अपने वो थपलियाल जी कहां हैं?" जब मैंने सफ़दर के बारे में उन्हें बताया कि वो मारे गये, तो उनका खुशदिल चेहरा एकाएक नीचे गिर गया। थोड़ी देर वो सन्न रह कर, अपनी हॉर्न दे रही बस चढ़ना भी भूल गये। फिर अचानक एल० एम० जी० की गोलियों की तरह वो गालियां घुड़ियाने लगे, कि सारा स्टेशन उनकी बारूदी गंध से भर गया। भीड़ इकट्ठी होने लगी। वे चुन-चुनकर गाली दे रहे थे। उन्होंने राजनीति, सरकार, पुलिस, सभी एक से एक मोटी मौलिक-गालियां दे डालीं। उनकी गाड़ी चलने लगी, यो कन्डक्टर के बुला ले जाने पर उसमें जा बैठे और चलते-चलते खिड़की से मुंह निकाले गाली देते रहे। जब तक गाड़ी पहाड़ी मोड़ पर पहुंच कर ओझल नहीं हुई, उनकी आवाज़ सुनाई देती रही। उस अद्भुत आदमी की गालियों की गूंज अभी भी स्टेशन हिला रही थी।

सफ़दर को दी गई बहुत-सी श्रद्धांजलियों में हवलदार की वो गालियां मुझे जो सबसे अच्छी श्रद्धांजलि लगी।

किताबें

□ सफदर हाशमी

किताबें
करती हैं बातें
बीते जमानों की
दुनिया की इन्सानों की
आज की कल की
एक-एक पल की
खुशियों की गमों की
जीत की हार की
प्यार की मार की

क्या तुम नहीं सुनोगे
इन किताबों की बातें ?
किताबें कुछ कहना चाहती हैं
तुम्हारे पास रहना चाहती हैं
किताबों में चिड़ियां चहचहाती हैं
किताबों में खेतियां लहलहाती हैं

किताबों में झरने गुनगुनाते हैं
परियों के किस्से सुनाते हैं
किताबों में रोकिट का राज़ है
किताबों में साइन्स की आवाज़ है
किताबों का कितना बड़ा संसार है
किताबों में ज्ञान की भरमार है
क्या तुम इस संसार में
नहीं जाना चाहोगे
किताबें कुछ कहना चाहती हैं
तुम्हारे पास रहना चाहती हैं

कहानी

विष-वृक्ष

□ बद्रीसिंह भाटिया

नेकचन्द पिताजी के पास बैठा अपने लम्बे दौरे का वृतान्त सुना रहा था। पिताजी भी इस बीच गांव में घटी छोटी-बड़ी घटनाओं का विवरण दे रहे थे। उनकी बातों के बीच सांझ ढलने ही वाली थी। बाहर नेकचन्द की पत्नी उल्टियां कर रही थी। पिता बोले कि बहू कुछ दिनों से ही उल्टियां करने लगी है। सुस्त भी रहने लगी है। यों ठीक है कल ही सब सेन्टर की नर्स भी देख गई है उसे।

उसका माथा ठनका। कहीं गैस की बीमारी तो नहीं लग गई। गांव में ये लोग खाने-पीने का ठीक ध्यान नहीं रखते। वह उठा और बाहर निकला। पिता के शब्द उसके कानों में पड़े—"घबराने की कोई बात नहीं है, तू तो यूँ ही डर जाता है, होता ही है, कोई नई बात थोड़े ई है।"

आंगन के एक कोने में कपड़े धोने के पत्थर पर बैठी पत्नी उल्टियां कर रही थी, सूखी उल्टियां'। देखकर वह चौंका। उसने फिर सोचा—सारा दिन काम किया है, क्या पता खेत में पानी पिया भी कि नहीं,—सो गैस तो असर करेगी ही। उसने पत्नी का गर्म माथा अपनी हथेली से दबाते हुए कहा—"पूरी गैस निकल जाने दे। सब ठीक हो जाएगा।"

वह कुछ नहीं बोली तो नेकचन्द ने ही पूछा—"कब से है यह?"

"आठ दस दिन हो गए।" कष्ट से कराहते हुए पत्नी ने जवाब दिया।।

"तुम लोग हर कुछ खाते हो, तब होता है यह—सुबह कम्पोडर को दिखा लेना। अभी गुड़ और अजवाइन ले और पानी पी खूब।" उसने पत्नी को समझाया।

पत्नी ने कुल्ला किया और थकी-सी उठ गई। पति की बात का उसने कोई उत्तर नहीं दिया। सोचकर कि फिर कभी बता देगी। इस बार नहीं तो अगली बार बता देगी—पेट पर हाथ रखवा कर—पहले की तरह। खूब हंसेगा। उल्टी की बीमारी का पता—बुद्धू'''वह मन ही मन हंस दी। शरीर में टूटन रहते भी वह रसोई में गई। राख में दबा 'अंगार' हुआ गोस्टू निकाल कर खाली चूल्हे में चूर दिया। थोड़ा चूरा आग पर डाल दिया और चूल्हा सुलगने लगा। पानी गर्म करने को डोल रख दिया और खाली बाल्टी लेकर नल पर चली गई।

उधर पानी भरता रहा, इधर वह फिर सोचने लगी—कैसे शुरू करेगी? तीन बच्चों के बाद चौथे की तैयारी। नाराज होगा। तीसरा भी नहीं चाहता था। पर उसकी अपनी जिद थी। फिर सास को मना लिया था उसने। पर तब तो सास उसकी तरफ थी। उसे भी मरे दो साल हो गए। बेचारी छोटे को खाना खिलाती-खिलाती चल बसी। उसने सोच को झटका दिया।

इस बीच नीचे वाली ने आवाज दी—"क्या बन रहा है—आज तो बालम जी आए हैं?" हंस दी वह।

चूल्हे में ज़रा-सी फूंक मारने पर आग जल उठी। उसने दो लकड़ियां और लगाई और डोल पीछे करके चाय के लिए पतीले में पानी रख दिया।

नीचे कमरे में बाप-बेटा बतिया रहे थे। उनकी बात-चीत की गुनगुनाहट रसोई में भी सुनाई दे रही थी। वह बुदबुदाई—"पिता जी, हर बात चबा-चबा कर करते हैं। न जाने बातों ही बातों में क्या सिखा देते हैं। कई बार उनके कहे के परिणाम ठीक नहीं निकलते हैं।" उसे पिताजी का इस प्रकार से विवरण देना पसन्द नहीं। पति के कान का कच्चा होने पर उसका मन कड़वाहट से भर गया।

"यूं दिल का माड़ा नहीं है।" उसने सोचा। "बहुत चाहता है उसे। दूर परदेश में भी उसका खयाल रखता है। जब भी नई जगह टूर पर जाता है, कुछ-न-कुछ ले आता है उसके लिए। कोई कमी नहीं है उसे।" वह मन-ही-मन पुलकित हो गई। एक मीठी-सी सिहरन दौड़ती महसूस हुई रोम-रोम में।

एकाएक पेट में पल रहे जीव का खयाल आया—"गर उसने गिराने को कहा तब? पर क्यों कहेगा? इतनी जगह-जमीन है, गुज़ारा तो चलेगा ही। फिर 'सुरमे' को क्या खो जाणां 'नकरमे' को क्या बणा जाणा? पर हो सकता है लड़की ही हो। तब दो लड़के, दो लड़किया हो जायेंगे। तब क्या है?···इतने दिनों को आए हैं—आज ही कह दूंगी"—चाय बन गई थी। चाय के गिलास ससुर और पति को पकड़ा कर वह मवेशीखाने में चली गई।

उसका दिल धड़क रहा था। पति पूछेगा उससे—क्या पता पिताजी ने क्या-क्या लगाया है उसके पास। बीमारी के बारे में और उपचार के बारे में तो कहेगा ही। अगर न पूछे तो ज्यादा अच्छा। जब बच्चे का जन्म होगा तो कह देगी, इस बार समय से पहले ही हो गया। यूं खामख्वाह हत्या नहीं करानी उसे। सुना है जो गर्भपात कराती है वे अगले जन्म में भूतनी बनती है,···वैतरणी पर मुश्किल आती है और बड़ी बुरी सजा मिलती है उसे अगले जन्म में··· सुना है धर्मराज तक जाने ही नहीं दिया जाता। बीच में सींगों वाले दूत···।

वह अपनी निरर्थक सोच से सिहर उठी। ये गैस वाला बहाना ठीक है। पूछेगा तो कहेगी, न पूछेगा तो न सही। आज तो यूं ही टल जायेगा। पर पेट में उठ रहे मरोड़ ने उसे फिर परेशान कर दिया। उसका सारा बिचारा हुआ पीछे छूट गया और मरोड़ गले तक आ गया। वह गुसलखाने की दहलीज पर बैठकर लगी उल्टियां करने।

नेकचन्द अपने कमरे में रेडियो सुन रहा था। उसे उल्टी आने की आवाज़ सुनाई दी तो वह रसोई तक आ गया। पत्नी को देखा। उसे नमक डालकर पानी पीने को देते हुए बोला—"ले पी ले, सारी गैस ठीक हो जाएगी। मुए तुम लोग खाना ठीक नहीं खाते। तब होता है ऐसा।"

उसने गिलास लिया और गटक कर पी गई। इससे जी संभल गया थोड़ा। वह उठ कर रसोई का बाकी काम निबटाने लगी। न जाने इस बार मन में डर क्यों उठ रहा है? पहले तो कभी नहीं हुआ ऐसा। इस बीच नेकचन्द ने कहा—"तू रहने दे, चल लेट जा। मैं कर देता हूं।" पर उसने मना किया। आज ही तो आया है—कैसे कराए घर का काम।

छोटे ने जिद की कि वह पिताजी के पास सोयेगा। सो उसे उसने अपनी एक ओर सुला दिया। पत्नी घर का काम खत्म कर आई और अपने बिस्तर पर बैठकर अधूरे स्वेटर को पूरा करने लगी।

पत्नी को स्वेटर बुनते देख नेकचन्द को तरस हो आया। घर की अकेली औरत के पास कातने-बुनने को केवल रात ही बचती है। उसने करवट बदली और बीड़ी सुलगाई। बीड़ी खत्म कर उसने पत्नी से कहा—"भई, लाइट बन्द कर और सो जा। मैं तो थक गया हूं।"

वह उठी, पति की बगल से छोटे को उठाया और पास वाले कमरे में बड़की के पास छोड़ आई। फिर रोशनी बन्द की और पति के बिस्तर पर आ गई।

पति के पांव दबाते हुए उसने कहा—"आप ग़लत समझे?"

"हूं।"

"मैं बोल रही थी···ये गैस नहीं है।"

"हां।" पति ने अर्द्धनिद्रा की अवस्था में कहा।

"हां ऽ!" उसने पति की टांगों में ज़रा-सी चिकोटी काटी। खुश होकर कि पति सब समझ गया है।

"क्या कहा?" पति ने उसे पास खींच कर पूछा।

"ये कि इस बार दिन चढ़ गए हैं।"

'क्या कहा?" वह चौंका और उठकर चारपाई पर बैठ गया। मानो किसी चीज़ ने काटा हो। बौखलाया-सा बैंडस्विच टटोलने लगा। बड़ी मुश्किल से मिला। लाइट ऑन की। रोशनी में उसने पत्नी से पूछा—"अब बोल?"

पति का चेहरा देख वह घबरा गई। मन-ही-मन सोचने लगी, ऐसी क्या बात हो गई—पहले तो खुश होता था—तीसरे की बारी ही कुछ न-नुच की थी। कहीं यह नाराज़ तो नहीं। पर अभी क्या, जैसा चाहेगा कर लेगा। पर···उसके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। चुप रही। पति सेवा का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया। पैर दबाते हाथ वहीं ठहर गए। दिल की धड़कन बढ़ गई।

नेकचन्द ने पूछा—"बोल, क्या बोल रही थी?" वह चुप। बार-बार प्रश्न से वह और भी ज्यादा डर गई। पहले के दिन याद हो आए उसे। ज़रा-सी गलती पर ऐसे ही पूछता था। फिर हाथ-पांव जैसे भी आए उसकी हालत खराब कर देता था। पर नौकरी के बाद इसने हाथ नहीं उठाया, मामूली डांट-डपट तो चलती रहती है। ज़रा से रूठने पर जल्दी ही हार जाता है। पर ऐसा क्रोध?

क्या कारण हो सकता है, चौथे पर ही? तीसरे पर भी वह अस्पताल ले गया था। डाक्टर ने ऐसी स्थिति में गर्भपात के लिए मना किया था। उसके बाद ही सलाह दी थी कि वह तब नसबन्दी कराए चाहे नल-बन्दी। पर इसमें उसका क्या दोष? दिन चढ़ गए तो चढ़ गए··· फिर क्या पता इस बार लड़की ही हो जाए। एक जोड़ी लड़का, एक जोड़ी लड़की।"

"रतनी, मैं तुमसे पूछ रहा हूं?"

"कह तो दिया।" उसने जानू पर ठुड्डी रखे हल्की-सी आवाज में कहा।

"कैसे?" बौखलाहट में उसने पूछा। भूल गयी कि क्या कहना है। वह अपने भीतर के द्वन्द्व से जूझ रहा था।

जरा साहस कर रतनी ने कहा—"जानते तो हो, दुबारा पूछना चाहते हो ?"

"हां !"

"मगर क्यों ?"

"मैं···मैं··· ।" वह अपने भीतर का सच कहना चाहता था। मगर कुछ सोचकर चुप हो गया। पत्नी का चेहरा सहमा हुआ अवश्य था पर ऐसी अपराध की भावना या डर वहां नहीं था। पर भीतर उठे उफान को कैसे शान्त करे ? वह अपने को संयत करने लगा। पत्नी ने पांव दबाये, पर उसकी दाब में अब सुख नहीं; कष्ट होने लगा। उसने मन ही मन सोचा—"वह गांव आया ही क्यों ? क्या ऐसी अनहोनी सुनने ।"

छोटे के जन्म के बाद ही तो करा दी थी उसने नसबन्दी। आप्रेशन के बाद उसने डाक्टर की सलाह पर अपना चैक-टेस्ट करवाया था। डाक्टर ने रिपोर्ट देखकर कहा था—"तुम्हारा आपरेशन सफल है। अब तुम फ्री हो···।" फिर मुस्करा कर चिकोटी ली थी "केपेसिटी बढ़ेगी तुम्हारी। भई तुम हमारे दोस्त के पियोन हो। हां, अब तुम जा सकते हो।"

···फिर यह कैसे हो गया ? नहीं। कहीं कोई ग़लती है। अस्पतालों में सुना है कई बार रिपोर्ट बदल जाती है···फिर उसे एक अस्पताल का अश्लील-सा चुटकुला याद हो आया। पर मन में जो गांठ पड़ गई थी वह ढीली नहीं हुई। फिर उसने मन ही मन कम्पाउंडर से पूछने का निर्णय लिया और टूटे मन से लेट गया। हाथ पीछे कर बत्ती बन्द कर दी। उसकी पत्नी भी चिंतित मन साथ ही लेट गई, "महीनों घर नहीं आना और···"

नेक चन्द साथ लेटी पत्नी को न दुत्कार पा रहा था न अंगीकार कर पा रहा था। इतने दिनों बाद गांव आने की चाह पानी के घड़े की तरह टूटकर बिखर-सी गई···और वह देख रहा था ठिकरियां···। उसे खयाल आया···किसी निर्णय पर जाने से पहले एक बार फिर टैस्ट करवा लेना चाहिए। सुना है कई बार नस फिर जुड़ जाती है। कहते हैं कि कुछ डाक्टर नस काटने की बजाय नली के बीच धागा बांध देते हैं या नली के दो कटे सिरों को बांध कर यूं ही छोड़ देते हैं ! कहीं उसके साथ भी यही तो नहीं हुआ। अपने मन की टूटी ग्रंथियों को फिर से जोड़ने के प्रयास में भी वह बार-बार टूटता रहा।

"पर टेस्ट के लिए डाक्टर कारण पूछेगा ? सारा भेद खुल जाएगा। बेइज्जती भी होगी।" सोचता रहा वह। अंधेरे में तलाशता रहा रोशनी की कोई किरण। अंततः उसे प्रकाश का ख्याल आया। वही कुछ सहयोग करेगा।

प्रकाश ने बड़े इत्मीनान के साथ नेक चन्द की बात सुनी। उसे समझाया कि वह खामख्वाह शक में न पड़े। आपरेशन फेल हो जाते हैं—भाभी ऐसी वैसी नहीं है। फिजूल में चैकअप कराने से क्या लाभ। फिर इसके लिए डाक्टर लोग दोनों को बुलाना चाहेंगे। अलग-अलग पूछेंगे, तब ही अपना निर्णय देंगे। भई कुदरत बड़ी चीज होती है—नहीं लड़ा जा सकता इसके साथ। जो होना है होकर रहेगा···।

पर नेक चन्द को प्रकाश के शब्द सान्त्वना न दे सके। उसने बार-बार आग्रह किया कि वह केवल यह पता करवा दे कि आपरेशन पास है कि फेल। नस फिर तो नहीं जुड़ गई।

प्रकाश ने फिर समझाया। मगर उसने कह ही दी मन की बात—"यार ! तू मेरा दोस्त है। मुझे याद आ रहा है पिता जी ने इशारों में कुछ कहा था—घर के चलन की ही कुछ बात और टूर की नौकरी से डियूटी हटाने की बात। तब मैंने कतई नहीं सोचा कि तीन बच्चों की

मां···? पर भाई अब मेरा असमंजस किसी तरह दूर कर दो।"

ज्यादा जोर देने पर प्रकाश ने उसे एक कनिष्ठ चिकित्सक को दिखाया और टेस्ट करवा दिया। सैम्पल प्रयोगशाला में देकर वह दफ्तर आ गया।

दफ्तर पहुंचते ही हैडक्लर्क ने कहा "पी० ए० दो बार पूछ गया है, भीतर जाओ, साहब को कुछ काम है।"

भीतर जाकर वह साहब के पूछने से पहले ही बोला, "सर अस्पताल चला गया था।"

"क्यों खैरियत तो है न। कल टूर पर जाना है।" अस्पताल के नाम से साहब चौंके।"

"हां, सर ठीक ही है, छोटा-सा टेस्ट करवाना था···टूर कितना होगा सर, मैंने गांव भी जाना है।"

"अरे, अभी तो गये थे, खैर, लम्बा नहीं। अभी तुम कोठी पर चले जाओ। टूर के लिए सामान भी पैक करो और बीबी जी से लिस्ट लेकर थोड़ा-सा सामान ला दो। शाम को कुछ मेहमान आ रहे हैं। बीबी जी कहें तो तुम ठहर जाना, मदद कर देना उनकी। आजकल राम सिंह नहीं है घर पर।"

साहब का हुक्म ठहरा, वह चला गया। डिनर तक उसे रुकना पड़ा। देर रात घर आया तो पड़ौस से पता चला कि उसका दोस्त आया था। इन्तज़ार करके चला गया। वह प्रकाश को नहीं मिल सका क्योंकि सुबह वह टूर पर चला गया। टूर छोटा था मगर हैडक्वाटर से टूर खत्म होने के एक दिन पहले सूचना मिली कि दो और स्थानों का निरीक्षण साथ ही कर लिया जाये। सो कुल एक महीना लग गया। इस टूर में नेक चन्द काफी परेशान रहा। उससे काम में गलतियां होती रहीं।

खैर टूर से लौट कर उसने साहब का सामान कोठी पर रखा और अपना बैग लिए क्वाटर पर आ गया। क्वाटर से वह सीधा प्रकाश के पास अस्पताल चला गया। रास्ता भर अपने भाग्य को कोसता रहा। क्या पता प्रकाश मिलेगा या नहीं। पर प्रकाश उसे मिल गया। शिकवे-शिकायत और सफाई के बाद प्रकाश ने बताया कि रिपोर्ट ठीक है। ऐसे कोई सैल नहीं हैं जो आपरेशन फेल होने की पुष्टि करते हों।

"तब यह बच्चा कैसे हो रहा है?

"यह तो तुम जानो? मैं कहता था न कि शक में मत पड़ो। यह रिपोर्ट भी···।"

"तब एक और सैम्पल करवा दो यार। सुना है वे सैल दिखा देते हैं।"

"ना, तुम फिजूल में···यार उससे पूछो क्या बात है। ज्यादा जरूरत पड़ी तब करवा दूंगा।"

"कैसे हुआ होगा? क्या ऐसा हो सकता है कि नस थोड़ी देर को खुली और फिर ब्लाक हो गई?" उसने एक मूर्ख की तरह प्रश्न किया।

प्रकाश को हंसी आ गई। "नहीं यार ऐसा नहीं होता।"

नेक चन्द के भीतर गुस्से और असमंजस ज्वार उमड़ रहा था। उसकी आंखों के आगे सारी बिरादरी घूम रही थी और मन में लिया खतरनाक निर्णय स्थगित करना पड़ा।

वह सीधा अपने क्वाटर आया। मन टूट गया था। बिस्तर पर पड़ा न जाने पत्नी के बारे में कितने कोणों से सोचने लगा। हर समीकरण में उसे उत्तर घटा हुआ मिलता।

शनिवार और इतवार की छुट्टी थी। नेक चन्द इन दो दिनों में गांव जाना चाहता था। साहब से छुट्टी की बात करने का साहस नहीं हो रहा था। उसने छुट्टी लेने का तरीका निकाला। सुबह कोठी पर चला गया। रसोई में काम करते उसने साहब की बीबी से छुट्टी की बात की। छुट्टी मंजूर हो गई। उसी दिन वह रात की बस से चला और प्रातः पहुंच गया।

दिन उसने कशमकश में बिताया। पिता जी से भी बात करने का मन नहीं हुआ। उन्होंने पूछा भी—"नेक चन्द बच्चा, तू कुछ उखड़ा-उखड़ा-सा लग रहा है। क्या बात है?" परन्तु उसने कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया। पत्नी भी उसके चेहरे की भंगिमा भांप चुकी थी।

रात को उसने पत्नी से कुरेद-कुरेद कर पूछा—धमका-धमका कर, "किसका है यह बच्चा? कौन आता है तेरे पास? तू कुल्टा हो गई? क्या कमी थी तुझे?" पत्नी हक्की-बक्की पहले सुनती रही और फिर सोचकर बोल पड़ी, "पता नहीं क्या अंट-शंट बोल रहे हो? शर्म नहीं आती बेहूदा लांछन लगाते? पी तो नहीं रखी है।"

"रतनीऽ!" वह दान्त पीसता गुर्राया। क्रोध ने उसे विवेकहीन कर दिया था। उसने अपने शरीर पर से कपड़े उतारे और नंगा हो गया—"देख! तू भी देख ये टांके, तीन साल पहले आपरेशन करवा चुका हूं। और तू बोलती है, मैं अंट-शंट बोल रहा हूं। और ये दिखाऊं मैडिकल की रिपोर्ट। फिर तू बोलती है...। साली! कमजात..."

...रतनी मानो आसमान से गिरी हो। उसे सारा कमरा घूमता हुआ नजर आया। शरीर ठण्ड से कांपने लगा। मानो घड़ों पानी उस पर गिरा दिया गया हो। और ये जो सामने नंगा आदमी है, यह पति की नग्नता नहीं बल्कि वह स्वयं खड़ी है। सारा गांव उसे देख रहा है। वह उसी तरह उकड़ूं घुटनों पर ठुड्डी टिकाये सुबकती रही। काश, यह धरती यहीं से फट जाती तो उसी में समा जाती।

नेकचन्द ने उसे थप्पड़ और घूंसे मारे, पर वह चुप रही। बहते आंसू न जाने कहां सूख गये। जब उसने उसे बाजू से पकड़ कर घर से बाहर निकालना चाहा तो सख्ती से इतना ही बोली, "मैं ऐसी-वैसी नहीं हूं।" इससे नेकचन्द और भड़का। उसने उसे बालों से खींचकर फर्श पर पटक दिया, "साली तो ये मैडिकल रिपोर्ट...।" रतनी के भीतर भारी दर्द उठा। वह रोना चाहती थी। पर डर, साथ के कमरे में अध सोये बच्चों का आस-पड़ोस और पूरे समाज का।

"साली, मैं कल तेरे को बी ले चलूंगा अस्पताल, फिर बताना तू," कहते हुए नेकचंद ने दो लातें और जमा दीं। पर गनीमत रही कि नेकचन्द का कोई वार पेट पर नहीं पड़ा।

अंततः वह बड़बड़ाता हुआ बिस्तर पर आ गया। रतनी के मायके वालों को देर तक गालियां देता रहा।

रतनी देर तक जमीन पर पड़ी रही, "शरीफ-सा आदमी एकदम बदल गया। इसके मन का वहम अब मिटे नहीं मिटेगा! यहां रहना ठीक नहीं। कहीं भाग जाना चाहिए।"

"पर जाये कहां?"

"मायके?"

"वहां भी तो?"

"तो आत्महत्या की जाये?"

"नहीं मरने की हिम्मत मुझमें नहीं है। मेरे तीन बच्चे हैं। यह तो दूसरी ले आयेगा।

इनका क्या होगा ? सौतन थोड़े ही पालेगी···!"

"तब ?"

"मायके चली जाये कुछ दिनों के लिए। जब तूफान उतर जायेगा तो आ जायेगी। ये आदमी बुरा नहीं, मान जाएगा।"

मायके का ख्याल आते ही कुछ दृश्य सामने आये। बूढ़े माता-पिता, बड़े भाई-भावज। इसी सोच में एक चेहरा उभरा-नरेश !

नरेश का चित्र सामने आते ही उसके मुंह से हल्की-सी आह की आवाज़ निकली और एकदम हाथ-मुंह पर चला गया। एक बार फिर सब कुछ गड्ड-मड्ड हो गया।

ये बात कोई तीन-चार महीने पहले की है। रतनी मायके गई थी।

सुबह पनिहार पर मिला था नरेश। उसकी पीठ रतनी की ओर थी। दातुन कर रहा था। फौजी बनियान पहने, कड़ियल शरीर, पहचान नहीं सकी वह। इस गांव के लगभग हर घर से एक आदमी फौज में है—होगा कोई नया छोकरा। फिर उसने सोचा—ये फौजी न गर्मी जानते हैं न सर्दी। मौसम में ठण्डक आ गई है पर यह अभी बनियान पहने ही घूम रहा है। वह आगे बढ़ी। हमेशा की तरह उसने एक ओर से चिकनी मिट्टी ली और टोकणी मांजने लगी। उसकी ओर से बेखबर, पर आहट महसूसती हुई। अपने सिर पर उसने आदतन थोड़ा घूंघट सरका लिया था।

देखो किसमत, सुबह इस पनिहार पर हर समय कोई न कोई थोड़ी-थोड़ी देर के बाद आता रहता है—पर ऐसा समय बीता कि उस समय कोई न आया। दातुन फेंक कर वह बावड़ी की ओर आया, शायद कुल्ला करने। उसे देख रुक गया। फिर बोला—"अरे ! रतनी तू।"

"धक।" रतनी का दिल धड़का। ये तो नरेश है। कितने वर्षों बाद देखा इसे। नरेश के साथ वह शादी से पहले···। और एक बारगी सारा विगत उसके सामने आ गया। अपने बचपन और फिर अल्हड़ उम्र के वे दिन। धान के खेतों की मेड़ों पर चलते पांव। कणक के खेतों में, चरान्द में वे गांव के किशोरों से अलग होकर मिलते और फिर मिल-बैठकर कुड़कते मक्की, मुड़ी के दाने। फिर रुमाल और अंगुठियों की अदला-बदली···

एक दिन पता चला, नरेश भर्ती हो गया। उसी बीच रतनी को ये भी पता चला कि पिता जी ने उसका रिश्ता कर दिया है। सोलह-सतरह की होगी जब एक सरकारी नौकर के साथ ब्याह दी गई रतनी।

नरेश को निकट देखकर वह मुस्करा दी। एक नज़र उसकी ओर दी और टोकणी मांजते हाथ जैसे रुक गए। डील-डौल तो पहले भी था—अब और भी खूब हो आया है।

"रतनी-ए तू कब आई ?"

"कल ! होर तू दस, कब आया ?" वर्षों बाद अचानक मुलाकात से रतनी भी गदगद थी।

"अब तो पक्का आ गया।" उसने अपने बीते दिनों की बात कह दी रतनी से। भर्ती होने के बाद उसका ब्याह, उसका पता और गांव की जानकारी का सारा ज़िक्र। फिर यह कह कर चलता बना कि वह उससे मिलने उसके घर पर आयेगा।

रतनी भी पानी भर कर चल दी। रास्ते में अपनी जान-पहचान की सखी-सहेलियों से

मिलती, बतियाती घर आ गई। शाम को उसने अपने गांव जाना था, पर मां ने कहा—"एक दिन और रुक जा।" वह रुक गई। दिन में मां के साथ बैठी धूप सेंकती रही। इस बीच नरेश आ गया। नरेश ने किसी तरह उसकी मां को वहां से उठा दिया और रतनी के आगे प्रस्ताव रखा··· अपने पुराने दिनों की याद का···।

रतनी घबरा गई। क्या बोल रहा है, मुए को शर्म भी नहीं आती। अब इतने बरसों बाद···। वह बोली, "नरेश, भूल जा ये सब! मैं तीन बच्चों की मां हूं···अच्छा लगता है क्या? फिर तू भी तो···शर्म कर अब।"

"रतनीए, तू जाण। मेरा हक मार लिया उसने। पर देख ले आखरी बार···आज आई तो है ही···वर्ना याद रख फिर हम फौजी होते हैं,···तेरा घर बगाड़ के रख दूंगा मैं! चला मैं!" वह उठ गया। "हां! शाम को बांसों के कुंज में···।" इस बीच रतनी की मां आ गई थी। वह फिर बोला, "रतनीए अब्बी तो रैणा है न! म्हारे घर बी आणा। मैं चला। कणक के खेत से क्यार तक जाणा है।"

इस तरह वह अपनी बात फिर दोहरा गया। भीतर ही भीतर डर गई वह। अपने पर क्रोध आया—फिजूल में आई। पर उसे क्या मालूम था जो यहां···मुआ ये···क्या पता घर··· फिर अपने अल्हड़पन पर भी गुस्सा आया। बहुत पछताई कि क्या गलती कर बैठी? बहुत लीचड़ है यह। तब भी ऐसे ही तंग करता था। और आज···फौजी बहुत खतरनाक होते हैं··· एक बार भी···अपने दुश्मन का मलियामेट करने पर उतारू पर···इसका मुंह तो बन्द करना पड़ेगा। प्यार से समझा भी दूंगी।

फिर भी सोचकर वह नरेश के सुझाए स्थान पर नहीं गई, "मुआ बड़ा आया—क्या समझता है।···वो दिन और थे। अब उम्र के इस पड़ाव पर ऐसा-वैसा करना···।"

नरेश घायल बाघ की तरह छटपटाता रहा और रतनी को लांछित कर उसके परिवार को तहस-नहस करने के तरीके सोचने लगा। क्या और कौन-सा तरीका ठीक रहेगा। एक बार तो सोचा—साली का नाक काट देना चाहिए या टांग तोड़ देनी चाहिए—बार-बार याद आती रहेगी कि···।

बांसों के कुंज से वह रतनी की मां के घर आया। चेहरे पर हंसी बिखेर घर के लोगों से मिला। रतनी से वह बात न कर सका। कभी इस करवट तो कभी उस, वह रसोई में बैठा अपनी छटपटाहट बताता रहा। मौके-बे-मौके अपने खूंखार फौजी होने का भी ज़िक्र करता रहा। मानो रतनी डरकर अभी उठेगी और कहेगी—"ले तेरी आग···" पहले भी वह कई बार तंग आकर ऐसा कह देती थी।

दूसरे दिन रतनी ने अपराह्न में अपने गांव लौटना था। नरेश रास्ते में ताक में था। पर रतनी ने अपना छोटा भाई साथ ले लिया और संध्या से पहले गांव आ गई।

कहते हैं, अन्तिम माघ और घायल बाघ बहुत खतरनाक होते हैं। नरेश की भी वैसी स्थिति थी। वह अब बदले के पूरे मूड में था।

एक दिन रतनी के गांव आकर धमक आया। उसके ससुर से मीठी बातें कर उसका मन मोह लिया। रात वहीं बिताने के लिए रुक भी गया। रतनी उसकी उपस्थिति से बचती रही पर क्या करती घर की अकेली। ससुर से बताती तो क्या?

रात को पाहुने का बिस्तर उसने बड़की के कमरे में लगवा दिया। और बड़की को अपने

कमरे में सुला दिया। पर सुबह मुंह अंधेरे जब वह मवेशी का काम करने उठी और रसोई की ओर पोड़े पर से आ रही थी तो नरेश ने उसे अपने कमरे की ओर खींच लिया। उसने विरोध किया, पर भेड़िए की गिरफ्त जो कम नहीं हुई, सो नहीं हुई।

इस घटना के बाद रतनी घबराई-सी रहने लगी। उसे हर समय चिन्ता रहती—एक दिन कुछ न कुछ गड़बड़ होकर ही रहेगी···।

अपने दिन चढ़ने पर उसने सारी प्रक्रिया को सामान्य तौर पर लिया। उसे क्या पता था कि पति ने आपरेशन करवा लिया है। कभी उसने इसकी चर्चा की ही नहीं घर में···

जमीन पर पड़े-पड़े उसने चाहा कि उठे और कहे—सारी बात ! वह उठी और सामने की चारपाई पर। लम्बी सिसकारी भर कर लेट गई।

नेकचन्द मन पर पत्थर रखकर रतनी को अस्पताल ले गया। लेडी डाक्टर ने कहा, "भाई नेकचन्द तुम इस बार भी लेट हो गये। आपरेशन नहीं हो सकता। ऐसे में खतरा ज़्यादा होता है। पर ऐसा करना अब डिलीवरी हस्पताल में करवाना और आपरेशन करवा लेना। पता नहीं तुम गांव वाले क्यों नहीं समझते···।" वह डाक्टर को बताना चाहता था कि आपरेशन तो उसने स्वयं करा लिया है। वेतन में एक इन्क्रीमेंट भी ले चुका हूं। इसके पेट में मेरा नहीं किसी और का बच्चा है। सो इसे तो गिरा दो, यदि इसमें यह भी मर जाती है तो···। सिहर गया वह सोचकर "नहीं पत्नी की हत्या नहीं कर सकता।" और उसने रतनी से कहा—"चलो अब कहीं और देखते हैं। तूने कहीं का न रखा ? क्या बोलेगा साहब और बिरादरी क्या कहेगी। उल्टी छुरी से कटाया तूने नाक।"

अब वह दूसरी तरह सोचने लगा—"काश ! यह बच्चा मरा हुआ होता। कम से कम एक नाजायज हकदार तो नहीं आयेगा घर।"

उसे फिर ख्याल आया। क्या पता पहले के बच्चे भी ऐसे ही हों। मैं तो टूर पर रहता था। पर पिता जी ने पहले तो कभी नहीं दिया ऐसा संकेत जैसा इस बार कहा। ज़मीन से ऊपर उठा वह लौट जाता उसी धरातल पर।

कितनी बार पत्नी से तलाक लेने का विचार उसके गले तक आता। पर नहीं के उत्तर के बाद गले में ही फंस कर रह जाता। वह नहीं करेगा जग हंसाई। इसको ही सजा देगा। वह सम्पर्क ही नहीं रखेगा इससे।

अन्ततः उसने रतनी से पूछा—"रतनी इतने के बाद भी तू मेरे घर रहना चाहती है ?" उसने उसके पैरों पर हाथ रखा, "गलती हो गई। मेरी भी मजबूरी थी। मैं ऐसी-वैसी नहीं हूं। पर जो ग्रहण लगना था सो लग गया। मैं यहीं मरना चाहती हूं। तुम किसी दाई से कह कर गिरा दो इसे···अब मैं भी। नहीं चाहती···।

पूरे दिनों के बाद रतनी ने एक लड़के को जन्म दिया। डाक्टरनी ने उसका ऑपरेशन भी कर दिया। नेकचन्द सोचता रहा कि उसकी जायदाद का एक नाजायज हकदार उसकेघर में आ गया है। कई बार उसका मन करता कि मिटा दे हस्ती इस हकदार की। किसी डाक्टर से गोली लेकर या गला दबा कर। पर हर बार उसके ये विचार एक क्षण पहले बदल कर रह जाते···। उसे लगता वह पागल हो जायेगा। वह नहीं चाहता कि उसके दो बच्चों का हक कोई तीसरा ले, जिससे उसका रत्तीभर भी नाता न हो। वह रतनी से पूछ कर ही रहेगा उस कमीने का नाम और पंचायत में लिखा आयेगा लड़के के असली बाप का नाम। उसका वारिस मेरी

सम्पत्ति का वारिस नहीं बन सकता।

मानसिक यन्त्रणाओं से घिरी रतनी ने एक दिन रोते-रोते बता ही दिया सब कुछ। बचपन से लेकर आज तक की एक-एक घटना। और अपनी विवशता। फिर नेकचन्द के पैरों पर सिर रख दिया कि अब वह उसे रखे या छोड़ दे। मरना तो इसी घर में है।

नेकचन्द के मन में बात घर कर गई थी। बच्चे को नरेश के नाम लिखाना चाहिए। कचहरी में जरूरत पड़ेगी तो गवाही देगी ये। साला वो भी क्या याद रखेगा। पता चलेगा जब अपनी ज़मीन का हकदार खड़ा होगा···।

दूसरे दिन वह पंचायत-घर चला गया। उसने सचिव से जिक्र किया। बच्चे के जन्म का और रजिस्टर में नाम दर्ज करने का।

सचिव बोला, "तुम्हारे लड़के का नाम तो लम्बरदार और मैम्बर छः-सात दिन पहले लिखा गए हैं। अब तो दस नाम और चढ़ गए हैं।"

नेकचन्द ने धीरे-धीरे अपने मन की बात सचिव से की। सचिव बोला, "भई नाम तो चढ़ गया काट-पीट मैं करता नहीं, फिर कल पटवार में भी लोग कहेंगे ही; सो बड़ा कठिन है।" वह निराश हो गया। एक आसरा था सो भी। उसे लम्बरदार और मैम्बर पर क्रोध आया— "क्यों कर गए वे ऐसा ? उन्हें क्या पड़ी थी ? बड़े आये मेरे खैरख्वाह।"

और वह लौट आया। गोपनीय बात दो कानों से कई कानों की हो गई। गांव से होती रतनी के मायके तक पहुंची।

वहां से एक दो व्यक्तियों ने आकर नेकचन्द को समझाया कि वह हज़ार रुपया सचिव को और इतना ही पटवारी को दे। लम्बरदार को और मैम्बर को भी मिला ले साथ। करा दे खारज नाम। वे अपनी पंचायत में सचिव और पटवारी को मना लेंगे।

"पटवारी तो बाद में आता है, पंचायत पहले है। सो ये हो जाता है—आजकल क्या नी होता। साला नरेश अपने को बड़ा समझता है।"

नेकचन्द के मन में अनेक आशंकाएं उठती। सोचते-सोचते सिर तवे की तरह गर्म होता उसका। क्या करे, क्या नहीं ?

जब लोगों की तरह-तरह की बातों से उसका दिमाग खराब होने लगा तो वह उठा और वकील के पास चला गया। वकील से बात की और अपने प्रमाण पत्र दिखाए। पत्नी की गवाही के बारे में भी बताया।

वकील ने उसकी सारी व्यथा को धैर्य से सुना और कहा, "देखो नेकचन्द, जो हो गया सो हो गया। इस पर तलाक की बात तो बनती है, वो तुम नहीं चाहते। नरेश की बल्दियत का मामला नहीं बनता। उल्टी अपनी ही टांग नंगी होगी, जग हंसाई अलग। इसके लिए तुम्हें···"

वकील कुछ आगे कहता वह उठ गया। झपटा मार कर कागज़ उठाए और बाहर आ गया। अपने क्वाटर की ओर तीव्रता से बढ़ा। मानो कहीं आग लगी है और वह बुझाने जा रहा है। क्वाटर से पिछले मोड़ पर उसे एक परिचित मिला। हाथ मिलाने के बाद जब हाल-चाल पूछा तो वह अट्टहास कर बोला, "क्या हाल, कानून तो चुप है मैं टुकड़े-टुकड़े हो गया।··· मैं नंगा हो गया। मेरे आंगन में विषवृक्ष उग आया है। उसने मुट्ठियां भींच लीं और उस व्यक्ति का हाथ झटककर तेजी से आगे बढ़ गया।

[2-हरबंस काटेज, संजौली, शिमला-171006]

सेवा निवृत्त

□ **प्रकाश चंद धीमान**

हरि प्रसाद जी के चेहरे पर नज़र जमाना यूं तो कोई खास बात नहीं थी मगर आज हैडमास्टर साहब को लगा था जैसे उनके चेहरे पर उभरी झुर्रियों में सीलन-सी आ गयी है। चपरासी कागजात छोड़कर चला गया था। दफ्तर के हर कोने में एक स्याह चुप्पी अमावस की रात-सी गहराती जा रही थी और कमरे के बीचोंबीच लगी मेज के दूसरी ओर बैठे हरिप्रसाद जी चोर के तारे की तरह लावारिस से नाखूनों में जमी मैल खुरच रहे थे। भूमिका बांधने के प्रयास में हैडमास्टर साहब पहलू बदल रहे थे कि यकायक हरिप्रसाद जी की मरी-सी आवाज़ उनके कानों से टकरा कर कमरे की स्याह चुप्पी को कुरेद गई, "सान्याल कह रहे मेरे पेंशन पेपर्स आ गये हैं।" मन-ही-मन मुस्कुराये थे हैडमास्टर साहब। आदमी भी क्या जीव है ? अपने भ्रमो के सुख का लोभ कभी संवरण नही कर पाता और दुःखों में कितना आतुर रहता है कि कोई भ्रम के लिए ही सही, बांट तो ले। दूसरे के दुःख में साझा तो क्या ही करेगा आदमी मगर भरमाता जरूर है किसी चुभती बात को कहने से पूर्व कितना घड़ना पड़ता है ताकि चुभन में मिठास का आभास बना रहे। "हरिप्रसाद जी आप तो भाग्यशाली हैं। चार-चार बेटे और सभी रोजगार में, बड़े मजे से आराम के दिन बसर करने हैं अब तो न कक्षा की चिन्ता न परिणाम की प्रतीक्षा-बस राम-नाम जपा और सो गए।"

"मेरा पीरियड शुरु होने वाला है यदि आज्ञा हो तो कागजात पर हस्ताक्षर कर दूं।"

हैडमास्टर साहब को गुस्सा भी आ रहा था और आश्चर्य भी हो रहा था कि कितनी सरलता से उनकी बातों को नाखून के मैल की तरह खुरच दिया था हरिप्रसाद जी ने; मगर कागज सरकाते हुए सोचा था "बेचारा पहले ही सरकारी मौत की प्रतीक्षा में निढाल-सा है।" हरिप्रसाद जी ने शायद जीवन में प्रथम बार किसी कागज को पढ़े बिना हस्ताक्षर कर डाले थे।

कक्षा में प्रवेश करते ही हरिप्रसाद जी चाहकर भी छात्रों की ओर नहीं देख सके थे। हर चेहरे पर उतरता कैशोर्य और दस्तक देता यौवन जैसे काटने को दौड़ रहा था छात्रों की आंखों में तैरते प्रश्नों की ओर ध्यान दिये बिना हरिप्रसाद जी ने पढ़ाना शुरु कर दिया मगर घंटी की आवाज़ से चौंक उठे थे, क्योंकि अभी अध्याय पूरा न हुआ था···यह कैसे सम्भव था कि समय हरिप्रास जी को इतनी क्रूर हार दे जाए। मगर छात्र एक-एक कर कमरा छोड़ चुके थे और खाली बैंचों के सामने वे अकेले थे। पुस्तक बगल में दबाये जैसे ही उन्होंने स्टाफरूम में प्रवेश किया तो सान्याल ने हल्की, मुर्दा-सी एक बेबस मुस्कराहट हरिप्रसाद जी की नजरों पर थोप दी थी।

"अरे हरिप्रसाद जी ! यह एक माह तो आराम से काट लो । एक तो आपकी यह हिन्दी और संस्कृत पहले ही आॅऊट आॅफ मार्केट ऊपर से आपके पूरे होते दिन !"

"अपनी राष्ट्रभाषा···"

"हरिप्रसाद जी ! राष्ट्र भी चूल्हे में झोंका है तो भाषा भी···अब तो ये भाषण बन्द कर दो और कुछ दिन आराम से काटो ।"

"आराम से तुम्हारा मतलब वैसे तो नहीं जैसे तुम लोग कर रहे हो कि सुबह आते ही कैरम या ताश फिर दिन में मटर-गश्ती और रात को ट्यूशन के बहाने या एक्सट्रा क्लास के बहाने···"

"हरिप्रसाद जी ! आप हमारी चिन्ता करने के बजाय अपनी खाल का ध्यान रखो ।"

हरिप्रसाद जी ने बुरा नहीं माना था । यह सब तो क्रम-सा हो गया है और हरिप्रसाद जी को स्वयं पर ही गुस्सा भी आता कि वह बार-बार क्यों इन निरर्थक बहसों में उलझ जाते हैं । सान्याल कौन-सा अकेला अपवाद है यहां तो सब मुखौटे लगा कर जी रहे हैं । अपने पर हंसी आ रही थी हरिप्रसाद जी को । अपने घर में तो आदर्शों का रोना रोते-रोते थक ही चुके थे, जब अपने ही न सुधरे तो जग से क्या लेना-देना । सान्याल सोच रहा था कि हरिप्रसाद जी शायद बुरा मान गए वह अपनी झेंप मिटाने स्टाफ रूम से निकल गया था । एक-एक कर सहकर्मी आते जाते रहे । कोई कहता छोटी-मोटी दुकान कर लें, कोई कहता किसी प्राइवेट स्कूल में नौकरी ही देख लें । राजन आया तो उसने सुझाव दिया कि साल में तीत-तीन महीने हर बेटे के पास काट लें आखिर बुढ़ापा है ही आराम के लिए । गांव में मिलता ही क्या है ? शहर में हर सुविधा है, पेंशन भी अच्छी मिलेगी तो बोझ बनने वाली भी कोई बात नहीं । हरितनारायण जी अन्दर ही अन्दर कुढ़ रहे थे । मगर चुपचाप अखबार में नजरें गढ़ाए सुनते रहे । स्कूल बन्द होते ही वह अकेले ही निकल पड़े थे आज । मन ही नहीं किया था कि किसी के साथ जाएं । घर पहुंचते ही अपने कमरे में बैठ गए थे । कमरे की पिछली खिड़की से डूबते सूरज की रक्ताभ रोशनी थी । कब कौन आया गया, हरिनारायण जी की कोई सरोकार न था बस चूल्हे पर चढ़ी दाल की गंध नथुनों से टकराकर लौट रही थी कि अचानक सारे घर में जैसे कुहराम मच गया था । हरिनारायण जी उठने ही वाले थे कि कौशल्या हांफती हुई कमरे में पहुंची, "भगवान के लिए रमेश को सम्भालो···आज फिर नशे में धुत्त बहू को पीट रहा है—मैंने कोशिश की मगर···" और कौशल्या रो पड़ी ।

हरिनाराण जी की नजर जैसे ही कौशल्या के बिखरे बालों और नाक से बहते खून पर पड़ी उनका सारा अस्तित्व ही गुस्से से कांपने लगा । वे दरवाजे की ओर लपके और पास रखी लोहे की पाईप ही हाथ में चढ़ी मगर रमेश पर खून सवार था और इससे पहले की हरिनाराण जी पाईप का वार करते वे फर्श पर धूल चाट रहे थे । रमेश हरिनारायण जी पर ताबड़ तोड़ घूंसे जमा रहा था, "स्साले बुढे खूसट ! तेरी चाल मैं समझता हूं···बहूं से मीठा-मीठा बोल कर, उसे उपहार देकर और बेटी-बेटी कहकर फांस रखा है···इस हरामजादी को जब भी साथ चलने को कहता हूं तो तेरी सेवा करना चाहती है । मैं आज यह कहानी ही खत्म कर दूंगा··· स्साले खूसट को जवानी चढ़ी है ।"

हरिनारायण जी के कानों तक केवल सांय-सांय की भयानक-सी आवाज ओर शरीर पर पड़ते घूंसों की आवाज धमाक ही पहुंच रही थी । अब न हाथ-पांव चल रहे थे न ही दिमाग ।

रमेश ने कब तक और कितना मारा यह अहसास ही मिट चुका था। सुबह शरीर पर चढ़े हल्दी के लेप से हरिनारायण जी को रात की याद आई थी मगर बहू को पास बैठा देख कर उन्हें कुछ न सूझ रहा था।

"रमेश कहां हैं ?" हरिनारायण जी ने बहू से पूछा।

"सामान साथ लेकेर ड्यूटी पर चले गए हैं, मुझे यह कहकर कि या तो आज शाम तक मैं उनके पास पहुंच जाऊं या फिर वे मुझे आजाद कर देंगे।"

"तुम्हें साथ ही जाना चाहिए था, वह तुम्हारा पति है। मैंने ही गलती की जो उसे तुम्हें ले जाने से रोका।"

कौशल्या जो अब तक चुपचाप सिर झुकाए बैठी थी यकायक बिफर पड़ी थी, "ऐसी नालायक औलाद से तो अच्छा था मेरी कोख में पत्थर पड़ जाते। कैसे-कैसे भूखे नंग रहकर पाला था इनको इस उम्मीद में कि बुढ़ापे में सहारा देंगे···कभी ढंग का कपड़ा भी नहीं ओढ़ा। रात-रात भर जुगाला इनका बचपन। आपको भी क्या मिल गया ? तब तो कहते थे, "कौशल्या, हमारे बेटे कुछ बन जाएं तो ही चैन मिलेगा···क्या फर्क पड़ जाएगा अगर अपने घर में हम रूखी-सूखी खा लें या फटे-पुराने कपड़े पहन लें शहर में वे कॉलेज जाते हैं, उनका तो खर्च होगा ही। नया जमाना है फिर बेचारे हंसी-खुशी के दिन भला क्यों गुजारे रो-रोकर, जब उनका बाप कमाता है। आज एक डाक्टर है, एक अफसर है एक बैंक मैनेजर है तो एक बड़ा कलाकार है मगर मां-बाप उसी हाल में बसर कर रहे हैं। इन नालायाकों से तो बेटी ही अच्छी है जो माह में कम से कम एक बार आकर सुध तो लेती है। बेटी को तो पढ़ने भी न दिया क्योंकि आपके इन राजकुमारों का ही खर्च पूरा न पड़ रहा था। अब ये शहरों में बस गए हैं और कारों में घूमते हैं। मगर बाप उनको पढ़ाने और ब्याहने के कर्ज में डूबा आज भी दो साल पुरानी धोती और फटी चप्पलों को उसी धूल मे घसीट रहा है।

"कोशल्या ! अच्छा है जितनी भड़ास निकल सके निकाल ही दो, क्योंकि हम और कुछ भी नहीं कर सकते। अरे पगली ! बेटे के हाथ से मार खाने का सुख भी हर एक को नहीं मिलता···रो भी नहीं सकते और हंस भी नहीं सकते। औलाद से क्या शिकवा ? जाओ सान्याल से कह देना मेरी तबियत ठीक नहीं, मेरी छुट्टी की अर्जी दे दें। और बहू तुम दिन वाली बस से रमेश के पास चली जाओ।

"मगर पापा !"

"तुम रमेश की पत्नी होने के कारण ही हमारी बहू हो तो पहला अधिकार तो उसी का है। हां ! रमेश भावुक है और शराब ज्यादा ही पीने लग गया है तो उसे संभालने का प्रयास करो। मैं जानता हूं जुए के कारण उसका हाथ अक्सर तंग रहता है, मैं तुम्हें पैसे भेजता रहूंगा मगर उसे बिखरने से बचाओ।"

कौशल्या ने चुपचाप सभी बेटों को पत्र लिखकर झूठ ही कह दिया था कि उनके पिता सख्त बीमार हैं और उन्हें देखना चाहते हैं। रजनी को रमेश वाली घटना भी लिख ही डाली थी। हरिप्रसाद जी के शरीर का दर्द भी कम हो रहा था और चार दिन बाद सभी लड़के भी आ गए थे। रजनी के पति किसी व्यावसायिक सिलसिले में देहली थे परन्तु मां का पत्र पढ़ते ही उसका खून खौल गया था और वह सीधी गांव चली आई। पिता को देखते ही उसका रोना छूट गया। मगर हरिप्रसाद जी की दिलासा और आत्मविश्वास देखकर वह हैरान थी आखिर किस

मिट्टी के बने हैं ये। हरिप्रसाद जी के बेटों के गांव आने की खबर पाते ही सारा गांव ही उमड़ पड़ा था।

"हीरों की खान है आपका घर हरिप्रसाद जी।"

"अरे क्यों न हो? कौशल्या भाभी ने रात-रात भर लालटेन की रोशनी में खेती की, जब तक गांव के लोग जागते थे हरिप्रसाद जी और कौशल्या भाभी खेतों का काम निपटा कर घर लौट रहे होते थे। इधर हरिप्रसाद जी स्कूल को भागे उधर भाभी ढोरों के सिरहाने। भई! दस दस हजार रुपया तो ढोर और दूधों को बेचकर कमाया वरना चार-चार लड़कों को शहर में इतनी ऊंची पढ़ाई कराना खाला जी का बाड़ा नहीं।"

रमेश भी लौट आया था मगर सिवा रजनी के किसी को उस घटना की भनक नहीं लगने दी थी हरिप्रसाद जी ने। सुव्रत, राजन, सितांशु और रमेश दिन भर गांव घूमते, मां पोते-पोतियों में उलझन कर के यह भी भूल चुकी थी कि उसने क्यों बुलाया था इन सबको। हरिप्रसाद जी ने डाकघर में जमा पैसे निकाल कर कौशल्या को सौंप दिए थे ताकि बेटे, पोते-पोतियां और बहुएं किसी चीज की कमी न महसूस करें। रजनी यह सब देखकर परेशान-सी हो उठी थी। मगर हरिप्रसाद जी उसकी बचकाना चेतावनियों से टस से मस न हुए। रात सुव्रत उनके कमरे में आया तो उसका परेशान चेहरा देखकर हरिप्रसाद जी का दिल डूबने सा लगा।

"क्या बात है सुव्रत? काफी परेशान से लग रहे हो।"

"पापा! अगर आप बुरा न मानें तो एक···।"

"अरे! बुरा क्या मतलब?"

"मुझे फ्लेट की किश्त देनी है, इधर गाड़ी का ओवर हालिंग करवानी पड़ी—बस दो-एक महीने की बात है. मैं लौटा दूंगा।

"कितनी जरूरत होगी?"

"बस केवल दस हजार से काम चल चल जाएगा।"

मगर बेटे इतने रुपये···"

"आप रिटायर तो हो ही रहे हैं···फंड के पैसे वैसे भी जमा ही करवाने हैं ···तब तक मेरा काम चल जाएगा।"

जी० पी० एफ० से रमेश के ब्याह को पैसा निकाल लिया था और कुछ लोगों से कर्ज उठाना पड़ा था, वह भी वापस करना है तो रह ही कितना जाएगा। खैर फिर भी तुम परेशान क्यों रहते हो···मैं कुछ न कुछ करूंगा।"

सुव्रत के जाते ही कोशल्या आ गई थी। हरिप्रसाद जी कौशल्या के चेहरे पर उमड़ती ममता देखकर अनायास मुस्करा उठे।

"कैसा भरा-भरा और चहकता-सा लगता है घर। वर्षों बाद आज ऐसा लग रहा है जैसे जवानी के दिन लौट आए हों।"

"तभी शायद आजकल फुरसत नहीं कि एक प्याली चाय को भी पूछ लो···बड़े-बूढ़ ठीक ही कहते हैं कि मूल से ब्याज प्यारा होता है।"

"अच्छा···अच्छा! चिढ़ बाद में लेना। मैं यह कहने आई थी। कि रमेश की बहू को तो पूरा जेवर बनवाया था हमने, मगर तीनों बड़ी बहुओं को तो शगुन भी नहीं दे सके थे। मैं तो मरने को बैठी हूं सो सुनार को बुलाया था दिन में···सारे सीने में तीन वैसे ही हार बन

जायेंगे जैसा रमेश की शादी में दिया था···आप घड़ाई के पैसे देकर कल स्कूल से आते वक्त ले आना।"

"ठीक है···जो तुम करोगी वह तो मानना ही पड़ेगा।"

"अरे हां याद आया···राजन कार खरीद रहा है···मुझसे कह रहा था आपसे कहते शर्म आती है, उसे पन्द्रह हजार रुपये चाहिए।"

मगर कौशल्या इतना रुपया···"

"अरे आप उस दिन कह रहे थे कि पैंशन 'कम्यूट' करवा कर बीस हजार रुपये इकट्ठे मिल जायेंगे···बस वही दे देना राजन को।"

हरिप्रसाद जी सोच रहे थे कि एक ग्रेच्युटी ही बची रह गई उससे क्या-क्या करेंगे? रमेश के ब्याह का कर्ज, रजनीं के जेवरों का कर्ज और ऊपर से पेंशन भी कम। अभी न जाने कितने वर्ष जीना है। उस मामूली पैंशन से कैसे गुजर होगा? अगले ही सप्ताह चारों बेटों की वापसी थी और कौशल्या हाथ धोकर पीछे पड़ गई थी कि लाला जी से उस समय तक कर्ज ले लें। जब अपना पैसा नहीं आ जाता लाला नारायण हरिप्रसाद जी को वर्षों से जानते थे। पांच रुपये सैंकड़ा प्रति माह की दर से पच्चीस हजार कर्ज उठा लिया। मगर रजनी को इसकी भनक लग गई थी। रजनी ने बहुत समझाया मगर हरिप्रसाद जी ने कौशल्या की ममता से भिड़ना उचित न समझा। राजन और सुव्रत रुपये पाकर हैरान थे कि इतने अच्छे स्टेटस के बाव जूद उन्हें कोई सौ रुपया उधार देना गवारा न करता था और एक मामूली मास्टर को इतनी बड़ी रकम इतनी आसानी से मिल गई। मगर अब रजनी चुप न रह सकी थी और उनके शहर जाने से एक दिन पहले उसने चारों भाइयों को पापा के कमरे में बुलाकर पूछ ही लिया।

"पापा कल रिटायर हो रहे हैं, अब ये दोनों अकेले इस गाँव में भी कैसे रह सकते हैं। अब शरीर बूढ़ा हो चला है। आप लोगों ने क्या सोचा है इनके बारे में?"

"मैं तो कहता हूं। इस प्रापर्टी से फायदा क्या? सारी बेचकर शहर में एक मकान खरीद लेते हैं। इससे ज्यादा तो किराया ही आ जाएगा। पापा-मम्मी जिसके साथ चाहें रह सकते हैं।" शीतांषु ने तर्क दिया था।

मम्मी-पापा बच्चों में खुश रहते हैं सो हमारे साथ चल सकते हैं। रिंकू को स्कूल भेजने के लिए एक औरत रखी थी मगर वह दूध भी खुद पी जाती थी—अपना तो अपना ही होता है।"

सुव्रत की पत्नी ने उसकी बात का समर्थन करते हुए कहा।

राजन ने भी यही राय दी कि गांव की संपति का क्या लाभ, जब यहां किसी ने रहना ही नहीं। शहर में हर चीज उपलब्ध होती है फिर घर के छोटे-मोटे काम में यह करने के बाद ही गांव से जाना चाहिए, भला रोज-रोज कौन आता रहेगा? मम्मी-पापा जिसके साथ रहना चाहें रह सकते हैं।

रजनी चुपचाप छत पर लटकते पंखे को घूर रही थी। जब सभी चुप हो गए तो हरिप्रसाद जी ने कुछ कहने को कहा। रजनी ने हरिप्रसाद जी के गले में अटकती भावनाओं को भांप लिया था।

"पापा! छोटे मुंह बड़ी बात होगी, मगर कम से कम आपके रिटायर होने से भाइयों की एक समस्या तो हल हो गई कि उन्हें स्वामिभक्त नौकर मिल जाएंगे।"

चारों भाई एवं भाभियां यह सुनते ही भड़क उठे थे मगर हरिप्रसादजी मंद-मंद मुस्करा रहे थे और कौशल्या खिड़की से सटी सुबक रही थी। हरिप्रसाद जी आरामकुर्सी से उठकर कौशल्या की ओर बढ़े मगर कौशल्या के कंधे पर हाथ रखे-रखे उन्होंने कमरे में उपस्थित अपनी संतानों से गंभीर मुद्रा में कहा, "अच्छा होगा अगर तुम सब सुबह बिना अपना मुंह मुझे दिखाए ही शहर लौट जाओ जो तुम्हें स्थिति तक पहुंचा सकता है उसे कमजोर मत समझो। गैरों का बोझ उठाते मेरी उम्र बीत गई भला अब अपना बोझ तुम लोगों को सौंप दूं। तुम क्या जानो, घर परिवार क्या होता है। नाते-रिश्ते क्या होते हैं? एक परिवार के सदस्यों के सुख-दुख कैसे सांझा होते हैं? जंगली सूअरों की तरह तुम जिन घरों में अकेले रह कर 'प्राइवेसी' चाहते हो वे घर नहीं दड़बे होते हैं।

एक एक कर सारे लोग जा चुके थे। हरिप्रसाद जी ने सुबकती कौशल्या को अपने सीने से लगा लिया, "अरे पगली! आदमी भला कब निवृत हुआ है? ये मास्टर सेवा-निवृत हो गया तो क्या।"

[बंहना, बल्ह घाटी, जिला मंडी-हि० प्र०]

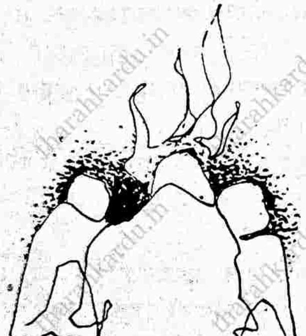

कविता

दो कविताएँ

☐ श्रीनिवास श्रीकांत

शहर : एक विलाप

यह शहर एक विलाप है !
गुजरे हुए समय और टूटे हुए सपनों का
जंगल के सरोद पर
जब बजता है हवा का झाला
हटता हैं आंखों की पुतलियों से
जब स्मृतियों का दिल-फरेब जाला
वह उतरता है जिस्म की बोतल में
पैमानों की खनक के साथ
हथेलियों में सहेजता स्वयं को उनींदा

यह शहर एक मिलाप है
मदिराहाट की मेजो के आर-पार
गिलास के घुंघरुओं में छनकता
सड़कों पर लड़खड़ाता पागलपन
असहाय

सर्दियों में कभी-कभी धुन्ध के साथ
घुस आता कमरे में
आंखों में उतरता
अपने खोये हुए वैभव
और स्तब्ध खोखलेपन के साथ
करता हूं जब मैं इस शहर में
गुज़रे दिनों का हिसाब
चढ़ता-उतरता पहाड़ी ढलानें
मौत सरक आती है करीब

फाईलों से बंधी है यहां
हर कारकून की नियति

कहां गये वो पिछले कल के
परिचित चेहरे
बिलियर्ड की गेंदों से सम्मोहित
मेज की कोरों पर टिकी
एकाग्र कुहनियां

जिन्होंने बिना तीर तलवार के ही
लड़ा यह जीवन का महासमर
कहां गये वो मदिरा के पैमानों से
समय को नापते मनमौजी सम्राट
शोषक थे वे सब, हां शोषक
विलास में खनकते गिलास
यह शहर अब एक अभिशाप है
जिसे ढो रहे
झुकी-कमर चढ़ाइयां चढ़ते
कश्मीरी कुली

छीनते-झपटते चालाक-पुस्त
मगर शतरंज के अनाड़ी-खिलाड़ी
नींचे के पहाड़ों में
नहीं होता पूरा अनाज
टोकरियां उठाते
'मोहणा' गाते
खेलते पुश्त-दर-पुश्त
समय के साथ
घर-घर का खेल

पूरे का पूरा शहर है जिप्सी
क्या राजनेता
क्या अफसर
क्या बाबू
कुछ ऐसी भी हैं बस्तियां यहां
जहां घुटता है

असमान का दम
धूप के प्रहारों से भी जहां
नहीं खुलती सर्दियों में
अन्धेरे की सांकलें
बाहर सड़कों पर जब
पागल हुआ जाता है मौसम

पहले-पहल जब मैं आया था इस शहर
नीली-नीली शरद घाटियों में
फैली थी
पीली-पीजी नशीली धूप
कुछ पल ही में
सूरज हो गया था लाल
पश्चिम की वेदिका पर
दी हो किसी ने जैसे
बकरे की बलि
एक धर्माचार, एक वन्य पूजा की तरह
लगा था यह शहर
मगर आज इस जर्जर बुढ़ापे में
जब मैं एक पैन्शनर
तय कर आया बरसों का सफर
यह मेरे पांवों में
लिपट गया है सांप की तरह
मेरी हर हांफ के साथ
जुगालता जहर की पोटलियां
यह शहर एक सांप है।

एक-एक कर बिछड़ गये
सभी दोस्त
एक-एक कर गुज़र गये
सभी दिन
जैसे हों वे कल का टूटा सपना
जैसे हों चीड़वन में हवा का जाज
जैसे हो पथरीली ढलानों पर
कंटीली थोरों की याद

बरसाती नदी का
दूर हटता
उद्दाम शोर
शहर का यह ना-उम्मीद
अप्रत्याशित बदलाव
चटका रहा मेरी हड्डियां
धुंधला रहा आंखों में
मेरा गांव
सप्पड़ का खलिहान
पीपल के नीचे की बावड़ी

गूंज रही है जहन में
एक दुम हिलाते
राजभक्त कुत्ते की भौंक
गर्मियों की इस उनींदी रात में
आकाश में चमक रहे जब
नौलाख तारे
दूर कहीं जंगल में लगी है आग

शराब घर में बूढ़ा

भुतली हवेलियों के इस उन्मत नगर में
शराब घर के नीम अन्धेरे में
स्थिर है वह बूढ़ा
अपनी यादों में डूबा
जहां हर पहचान छोड़ रही
उसका साथ
उसने देखे हैं
देवदार वीथियों से गुज़रते
पचास वसन्त
घाटियों को सफेदी से उजलाते शिशिर
घुघतियों के मधुर गीत
लेकिन वह सब
अब थपथपाता है स्वप्न सा
दुःख से तिलमिलाते

शराब घर के अकेलेपन में
जहां वह पी रहा
इस शाम का आखिरी जाम
कबूतरों से उड़ गये वे दिन
वे अट्टहास
वे महफिलें
मूछों पर ताव देते कर्नल
उनकी जुआड़ी बीवियां
और शेम्पेन के खनकते हुए गिलास
अब तो जैसे दिन बन गये हैं तलघर
और शाम ही से सताने लगता है
शराब का सर्पदंश
पर घूरनें लगता है
मार्शल सा
दो ही पैग के बाद
बार का बड़ा बैरा
तरेरता आंखें
थमाता हाथ में पिछला हिसाब
घर को लौटते-लौटते
उसे याद आता है
अपनी मरी हुई पत्नी का पुराना डायलॉग
प्राम में हाथ-पैर हिलाता
अपना बड़ा बेटा
जो अब इतना बड़ा हो गया है
कि बाप उसे लगने लगा है
विक्टोरिया का
एक खोटा सिक्का
हालांकि पीता है
वह अपनी ही पैन्शन की दारू
लेता है अपनी ही सांस
आज नहीं जाएगा वह घर
सुननें को
कमाने वाली बहू के
ठेठ पंजाबी तानें

आज ढूँढेगा वह कोई आश्रय स्थल
उसने सुना है
बाहर भी बूढ़े रहते हैं
अपने परिवारों से अलग
वर्जित अहातों में

[द्वारा एच० पी० एम० सी०, निगम बिहार, शिमला-171002]

tharahkardu.in

दो कविताएँ

□ सतीशधर

त्यौहार टूटने पर

तुम्हारी भयावह हंसी से
गली रूठ गई थी
सम्बंधों का शहर टूट गया था।
मालूम अगर होता
इस रंग में आओगे तुम
सच
बरगद की छांव तले
सुनाता ज़रूर
दर्द भरा गीत तुम्हें
इन गीतों पर
शायद थिरकते पांव।
तुम्हारे आंसू देख
नहीं मायूस कोई
दर्द की सीमा को लांघ
मना रहा देश पवित्र त्यौहार
जानता हूं मैं
पिता की मौत का तार
पहली बार
तोड़ बैठा था त्यौहार
उन्नीदी आंखें तरसती रहीं
रौशनी के लिए
मायूसी से तुम्हारी जुड़ते रहे
अनेकों त्यौहार

tharahkardu.in

पर्त-दर-पर्त
ढूंढ़ते प्यार
रोजन !
दिल बहुत उदास है
सूनी कलाई का मत पूछो राज़
तुम्हारी भयावह हंसी से
टूट न जाए फिर
एक और त्यौहार

चालीसवाँ साल

उम्र के चालीसवें से
कोई सरोकार नहीं
आज़ादी के चालीसवें बरस का
आज़ादी जश्न मनाती है
उम्र मातम
आज़ादी और उम्र का समीकरण
नितांत अधूरा
उम्र मायूम
आज़ादी हैरान
धुनों पर बजते गीत
पढ़ती चालीसा
परेशां भीड़
आंकड़ों में नहीं कुछ जान
दांव पर लगा देश का सम्मान
वो जो कल तक
बने थे पोस्टर
उन्हीं की इन्तजार में
मस्त है
चौराहे की भीड़

[लोक संपर्क अधिकारी, जिला सिरमौर, नाहन, हि०प्र०]

चार कविताएँ

☐ श्रीवत्स

एक

आधी रात
आसमान में गया उड़ता
वायुमान
बाहर भीग रहे थे पेड़
देखा खिड़की से मैंने
कुछ ही घंटों का सफर
हुई होगी जमीन तुमने कोई और
सुदूर
जाते हुए कहा था मैंने
यात्रा सुखद रहे
और पेड़ से एक पत्ती झड़कर
अटक थी गयी झाड़ी पर
आयी होगी याद तुम्हें
इतनी दूर
देश से विदेश में सिर्फ
एक नींद के सफर के बाद
सोचा मैंनें
बाहर गीले पत्ते हिल रहे थे पेड़ों पर
हवा से
बरसात अभी-अभी थमी थी।

दो

बादलों को
समेटना चाहता था बाहों में अपनी
जानता था मैं
छोटी हैं बाहें
आलिंगन में नहीं भर सकतीं
बादलों को
फिर भी
आते देख बादलों को
फैला दीं बाहें मैंने
गुज़र गये बादल चुपचाप
फैला दीं बाहें वैसी ही
धरती पर आ गिरा आइकेरस फिर ।

तीन

जाते हुए बात की थी
फोन पर
याद है मुझे
तारीख, दिन
सर्दियों की वह एक
विदा लेती शाम थी
कहा था तुमने
अब नहीं लिखूंगी पत्र
कुछ बीत गया तब से
सोचता हूं
चिड़िया कहे यदि
अब नहीं गाऊँगी मैं
फूल कहें खिलेंगे नहीं अब हम
और सूरज रुठ जाए
कैसे चलेगा यह संसार, जीवन ।

चार

तुम आना
जैसे आते हैं दुख
खिलखिलाते हुए
और सीलन की तरह
हो जाते हैं जज़्ब
पुख्ता दीवारों में
तुम आना
जैसे पतझड़ में पेड़ों पर शाम
आना तुम

[योल बाजार, जिला कांगड़ा, हि० प्र०]

दो कविताएँ

□ मधुकर भारती

नन्हा मातृत्व

आधी रात बस गिरी
सैकड़ों मीटर गहरी खाई में
एक बस गिरी,
बस में बैठे दर्जनों परिवारों की दुनिया
पलभर में
अधकटे अंगों
खून के सैलाबों
अस्त-पस्त लाशों में बदल गई।
अन्तिम चीखों को सुनने के लिए
जिन्दा बची
अपनी मृत मां की छाती से चिपकी हुई
दस मास की एक नन्हीं बच्ची !

खोलो साइनाइड की पाइपों के मुंह
करबाओं परमाणु विस्फोट
रेडियोधर्मी विकिरणों के मालाजाल
ढक दो धुन्ध का सौन्दर्य
पृथ्वी पर जीवन का नामोनिशां मिटाने के लिए
तैयार करो नये से नये प्रक्षेपणास्त्र
चाहो तो पेड़ों पर
चढ़ाओ नरमुण्डों की मालाएँ या फिर
भून दो भविष्य चौराहों पर !

नन्हें मातृत्व का ललकारता प्रश्न है :
कौन माई का लाल
पृथ्वी को कर सकता है
जीवनविहीन ?

सांझी धरती पर

उसके दाएं और बाएं युद्ध के लिए
तैयार खड़े हैं आरोप और प्रत्यारोप
पट चुकी हैं गहरी खाइयां
गोला-बारूद से
पंक्तिबद्ध सजे हैं टैंक
लड़ाकू यान टिके हैं आकाश पर
अपने-अपने निशाने साधे
स्थित हो गये हैं प्रक्षेपास्त्र
चुनौतियां और चेतावनियां
दी जा चुकी हैं अन्तिम
ईश्वर और खुदा
बरसाने को ही हैं क्रोधाग्नियां
गोरे और काले
तय करेंगे श्रेष्ठता
पूंजी और वाचालता
निश्चित करेंगे अपना-अपना साम्राज्य।

थोड़ी सी अड़चन है बटन दबने में
इन सबके बीचोंबीच
नोमैन्ज़-लैण्ड पर
सबसे बेखबर
हल चला रहा है एक किसान !
धरती के हृदय में गहरा खुब रहा है
उसके हल का फ़ाल
अंकुरण होने की चाह लिए
दुबक रहा है बीज मिट्टी में
आकाश भर रहा है पनैले बादलों से
लहलानें को आतुर होंगी पंक्तिबद्ध सजी डालियां
ईश्वर और खुदा निकाल रहे हैं
नहरें पसीनें के लिए
चमकेगी धरती
गन्दुन के सुनहलेपन में !

[लोक निर्माण विभाग, जुब्बल, जिला शिमला, हि० प्र०]

समीक्षा

यह जो हरा है—एक ही सूत से बुना है

☐ अवधेश कुमार

'यह जो हरा है'—कवि प्रयाग शुक्ल का पांचवां और नवीनतम कविता संग्रह है। यहां तक पहुंच कर प्रयाग की कविता एक यह स्पष्ट आभास दिलाती है कि उसके पास इतने कम उपादनों के बावजूद एक ऐसी सघन बुनावट है मानो एक ही सूत के रंगे हुए धागों के ताने बाने से कोई थान तैयार कर लिया गया हो। और इस प्रकार बुने कपड़े में आलेखन भी भिन्न-भिन्न हों और यह आग्रह भी नहीं कि यह कविता का वस्त्र खादी है, रेशमी या ऊनी है; और कहीं-कहीं वह निरा टाट भी है। मगर है कविता का धागा ही।

इस संग्रह की कविताओं का पूरा अनुक्रम ही प्रयाग की कविता का भेद बताता-सा जान पड़ता है—

एक शाम को/यह जो हरा है/करो याद/जगह वही/इतवार की एक शाम/शहर की ऊंचाई से/साइकिल चलाती हुई लड़की/रात तीन बजे/आवाज़ें/एक शाम को थोड़ी दूर तक हम चले साथ/विदेश में होटल का कमरा छोड़ने से पहले लड़की पर/जब बहुत मन हुआ एक कविता लिखूं। हां या नहीं?/नीम/सिहराने रात के/रात को मोर/छत/एक कविता लिखना चाहता हूं/अब मैं क्या बात करूं? अधूरी नींद के बाद सुबह/कई बरस पहले/पुरानी कमीज़/खंडहर/एक पहाड़ी रास्ते पर अकेले/जब तुम पहुंचे हो इस शहर में/दूसरे शहर में/अधूरे रह जाते हैं शब्द/पेड़/विदेश में एक दोपहर/विदा/जाने न देना/हमें इकट्ठा किया/कम हैं अब ऐसी अकेली सड़कें/इतना जीवन/प्रेम/जाओ/गर्मियों की एक कविता/धूल/शब्द/जाग रहे हैं/खिड़की के पास वाली सीट/सुबह/शमशेर जी के लिए/दुःख/पानी अंधेरे में/आज ही/रात में वर्षा/कोहरे में/अनलिखा/घटना/हरकत/तुम मत घटना।

अन्तिम पूरी कविता को लें—

तुम घटाना मत
अपना प्रेम
तब भी नहीं
जब लोग करने लगें
उसका हिसाब।

ठगा हुआ पाओगे
अपने को
अकेला
एक दिन—
तब भी नहीं।

मत घटाना
अपना प्रेम,

बंद कर देगी तुमसे बोलना
नहीं तो
धरती, यह चिड़िया, यह घास, यह—
मुंह फेर लेगा आसमान।

नहीं तुम घटाना नहीं
अपना प्रेम।

क्या कुछ कवि कुछ खास संवेदनाओं अथवा एक-सी संवेदनशीलता के कवि होते हैं? जैसे कि इस कविता में वह शमशेर के बहुत निकट नज़र आते हैं—जो कि हिन्दी में बहुत कम हैं—तो, अवसाद और आसक्ति, आशा और निराशा—प्रकृति, प्रेम—उनका ओजस, उनकी धुंध और उनका एक नाजुक-सी मुंडेर पर ठहरा व टिका हुआ संतुलन—जो प्रयाग की कविता में है—वह हमारी आज की हिन्दी कविता में लगभग दुर्लभ है।

अंत में यही कि प्रयाग कवि हैं और सही-सही या गलती से भी नहीं कहा जा सकता कि वह किन और कैसे कवियों की कतार में रक्खे या रखाए जा सकते हैं। प्रयाग के यहां नॉस्टेल्जिया या अतीत मोह बराबर विद्यमान-लेकिन एक सतत संयत मुद्रा में विद्यमान है। वह काल के स्थूल विभाजन में नहीं बल्कि उसके अटूट प्रवाह में है—जहां भूत, वर्तमान तथा भविष्य की लक्ष्मण रेखाएं किसी आत्मनुभूति के बड़े ज्ञात क्षितिज पर एकाकार-सी होती व संभव जान पड़ती हैं।

इन कविताओं का हरापन एक ही कते सूत से बुना गया है।

साहित्यिक मुखपृष्ठ पर एक चितेरा

साहित्यिक, और खास तौर पर लघु पत्रिकाओं के पाठक के लिए भाऊ समर्थ एक बहुत ही सुपरिचित, और उससे भी अधिक एक सम्मानपूर्ण आत्मीय नाम है। हिन्दी की कम से कम तीन पीढ़ियां अनवरत रुप से पत्र-पत्रिकाओं के मुखपृष्ठों तथा भीतर प्रकाशित सामग्री के साथ उनके रेखांकन देखती चली आई हैं। हम उन्हें सहज ही एक लोक परम्परा के साहित्यिक

कलाकार के रूप में देखने के आदी ही चले हैं और उनकी रेखाएं इतनी जानी पहचानी हो चली हैं कि सतत हमारी स्मृति के एक सुनिश्चित कोने में मानो 'गोदने' की तरह छप गई हैं।

स्वयं इन पंक्तियों के लेखक ने उनके काम से बहुत कुछ सीखा तथा प्रेरणा प्राप्त की है। परिमाण तथा गुणवत्ता की दृष्टि से उनके रेखांकनों के बराबर और कोई दूसरा कलाकार कम से कम हिन्दी क्षेत्र में और कोई नहीं दीख पड़ता। हालांकि उनके प्रचुर मात्रा में बनाए गए रेखांकनों का तीन चौथाई से बड़ा भाग अमूर्त तथा दोहराव से घिरा और फैला हुआ है लेकिन उसमें निरन्तर वैविध्य और शिल्पगत बदलाव के संकेत हमेशा अलग से पहचाने जा सकते हैं।

ज्ञानरंजन के ठीक ही कहा है कि भाऊ समर्थ कला और साहित्य की दुनिया में एक जाने-माने और अत्यन्त सम्मानित कलाकार हैं। प्रगतिशील कला और विचार के लिए उन्होंने सारा जीवन समर्पित कर दिया। पिछले चार दशक से वे लगातार सक्रिय हैं और जनवादी कला प्रसार के लिए उन्होंने चित्रकला और रेखांकन का उपयोग किया। यह अटूट कार्य उन्होंने लगभग चुपचाप बिना आर्थिक उम्मीद के किया। और बाज़ार तथा पूंजीवादी कला के सारे चमकीलेपन से अपने को दृढ़ता के साथ अलग रखा। एक गर्वीले सर्वहारा का जीवन जीते हुए भाऊ ने हमारी कलाकार बिरादरी की संघर्ष-शक्ति को अग्रसर किया है।

भाऊ समर्थ के व्यापक रचना संसार का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि उन्होंने अब तक लगभग डेढ़ लाख स्याह-सफेद रेखांकन, दो हजार जलरंग तथा ढाई हजार से अधिक तेल चित्रों की रचना की है।

प्रस्तुत पुस्तक में भाऊ के रचनाकर्म पर समीक्षात्मक लेखों सहित उनकी कुछ प्रतिनिधि साहित्यिक रचनाएं तथा उनसे किये गए साक्षात्कार भी शामिल हैं जो कि भाऊ के व्यक्तित्व और कृतित्व का एक संतुलित प्रसतुतिकरण करते हैं। लेकिन पुस्तक में भाऊ के रेखांकनों तथा चित्रों की पारदर्शियों का अभाव बहुत खलता है इसलिए जो उनके काम से पूर्व परिचित नहीं हैं उसके लिए यह पुस्तक निरर्थक ही है। हिन्दी प्रकाशन में इस तरह के अभाव की स्थिति समाप्त करने की कोई कोशिश अभी नहीं दिखाई पड़ती यह घोर चिन्ता का विषय है। फिर भी भाऊ की षष्टिपूर्ति के प्रसंग में यह एक संदर्भ ग्रन्थ की तरह है।

यह जो हरा है : प्रयाग शुक्ल; वाग्देवी प्रकाशन, सगुन निवास, चंदन सागर, बीकानेर-334001, मूल्य : 40 रुपये।

भाऊ समर्थ : भांत-भांत के रंग, सम्पादक : चरणसिंह अमी, प्रकाशक : पराग प्रकाशन, दिल्ली-32, मूल्य : 50.00 रुपये।

कांगड़ा कलम के चितेरे : ओ० पी० टॉक

□ डॉ० प्रत्यूष गुलेरी

स्वतन्त्रता से पूर्व भारत छोटी-छोटी रियासतों में बंटा हुआ था। हिमाचल प्रदेश की पहाड़ी रियासतों में गुलेर, कांगड़ा, चम्बा और मंडी कला एवं साहित्य के क्षेत्र में विख्यात रही हैं। चित्रकला के इतिहास में 'कांगड़ा कलम' का उद्भव और विकास एक महत्वपूर्ण घटना है। जिस कांगड़ा चित्रशैली को कोमल सौन्दर्य की सृष्टि कहा गया है उसका प्रादुर्भाव और सम्यक् विकास गुलेर में हुआ था। गुलेर क्षेत्र से प्राप्त प्राचीन पांडुलिपियों व नवीनतम शोध के आधार पर यह निर्विवाद सत्य है कि यहां चित्रकला और ब्रजभाषा साहित्य साथ-साथ पनपते रहे और चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुए हैं। रामायण के उत्तरकाण्ड से जुड़ी चित्रावली जो लेखक को प्राप्त हुई है बड़ी भव्य और चित्ताकर्षक है। रामचरित मानस का उत्तरकाण्ड हस्तलिखित है और इसका सम्पूर्ण कवर अनेक सारे चित्रों से चित्रित है।

मुगल दरबार के हिन्दू कलाकार जो नादिरशाह के आक्रमण के शिकार हुए थे उन्होंने पहाड़ी रियासतों में आकर राजाश्रय ग्रहण किया। यहां के पहाड़ी राजा-महाराजा कला प्रेमी और साहित्यानुरागी तो थे ही। प्राचीन कांगड़ा चित्रशैली के चित्रकारों में पंडित सेऊ, नैनसुख तथा मानक की चर्चा की जाती है। अपने बचपन के दिनों में गुलेर के अन्तिम चितेरे लक्ष्मण उर्फ लच्छू को उसके घर में चित्रों की रचना करते देखा था। आज लच्छू के बनाए चित्र कहीं भी देखने को उपलब्ध नहीं होते। 'कांगड़ा-कलम' का शुभारम्भ इन्हीं कलाकारों के हाथों गुलेर में हुआ और यही चित्रशैली कालान्तर में गुलेर चित्रशैली के नाम से मशहूर हुई। इन चित्रकारों के बनाए गुलेर नरेश विक्रम सिंह, दिलीप सिंह, गोबर्द्धनचन्द और रघुनाथ सिंह के अनेक चित्र उपलब्ध होते हैं। अनेक चित्र रामायण, महाभारत और गीता जैसे धार्मिक-पौराणिक ग्रंथों पर आधारित हैं। रीतिकालीन शृंगारिक रचनाओं पर आधारित चित्र भव्य हैं। राजपुरोहितों, राजानकों और राजगुरुओं के व्यक्तित्वों से प्रभावित होकर उक्त चित्रकारों ने उनको लेकर भी अपने चित्रों का निर्माण किया है।

जिस गुलेर-चित्रशैली की नींव 'दिलीप नरेश' के समय में (17वीं शताब्दी) रखी गई उसका चरम विकास गोबर्द्धनचन्द के समय (1744-73) में हुआ। यही गुलेर चित्रशैली जब चरमोत्कर्ष पर पहुंची तो विश्व में 'कांगड़ा-कलम' नाम से विख्यात हुई।

कांगड़ा-कलम की परम्परा को आज भी जिन कलाकारों ने जीवन्तता और प्राणवत्ता प्रदान की है उनमें ओ० पी० टॉक प्रमुख हैं। कांगड़ा चित्रशैली के रंग-विन्यास को जितनी भाव प्रवणता से श्री टॉक ने समझा, परखा और पकड़ा है यह सहज ही सराहनीय है। रंगों की

चमक-दमक, भावाभिव्यंजना के लिए सामग्री का कौशल युक्त संयोजन और प्रयोग करने में टॉंक सिद्धहस्त हैं। राष्ट्रीय स्तर की प्रदर्शनियों में टॉंक के चित्र पुरस्कृत हो चुके हैं। पंजाब ललित कला अकादमी, चंडीगढ़, कालीदास अकादमी-उज्जैन, हिमाचल कला भाषा-संस्कृति अकादमी-शिमला, क्रिएटर्ज-अम्बाला, कांगड़ा लोक साहित्य परिषद्-नेरटी और हिमाचल केसरी-धर्मशाला, ने इन्हें कला-साधना के लिए सम्मानित व पुरस्कृत किया है।

श्री ओमप्रकाश टॉंक का जन्म प्रथम अप्रैल, 1937 ई० को मास्टर सरदारी लाल जी के घर सोहदरा, तहसील बजीराबाद, जिला गुजरांवाला पाकिस्तान में हुआ था। चित्रकला का शौक छात्र जीवन से ही था! बजीराबाद (पाकिस्तान) में पलखू नदी के किनारे की बारादरी के वे भित्ति चित्र उन्हें आज भी स्मरण हो आते हैं जिन्हें वे कई-कई घण्टे स्कूल की छुट्टी के बाद जिज्ञासा और कौतुहल से देखते रहते थे। चित्रकला की ओर प्रेरित करने में बारादरी के इन भित्ति चित्रों का विशिष्ट योगदान रहा।

सन् 1947 ई० में विभाजन के साथ इनके पिता भारत आ गए और पंजाब के गांव सड़ोआ ज़िला होशियारपुर के सरकारी स्कूल में अध्यापक लग गए। यहां के स्कूल के ड्राइंग मास्टर आत्मासिंह मौजी से मिलना हुआ। श्री मौजी ने टॉंक की पेंटिंग के प्रति गहरी रुचि को देखते हुए इनका चित्रकला विषय रखवा दिया। श्री टॉंक ने अपने गुरु का मन जीत लिया। जब भी समय मिलता टॉंक देवी-देवताओं के चित्र, नेताओं और शहीदों के पोर्ट्रेट बनाने में जुट जाते। श्री टॉंक मैट्रिक उत्तीर्ण करने के पश्चात् 1957 ई० में शिमला के आर्टस कॉलेज में दाखिल हो गए और कला का डिप्लोमा हासिल किया। यहां पर श्री टॉंक को प्रोफेसर पी० एन० मांगों ने निरन्तर प्रोत्साहित किया। 1959 ई० में टॉंक धर्मशाला आ गए। इसी वर्ष नूरपुर के प्रसिद्ध वृजराज मन्दिर व सुजानपुर टीरा के मन्दिरों के भित्तिचित्रों ने इन्हें इतना आकर्षित किया कि इन्होंने सिर्फ़ कांगड़ा-कलम पर ही काम करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। अब टॉंक कांगड़ा कलम के लिए ही समर्पित हैं। कलाकार ओ० पी० टॉंक का कहना है कि कांगड़ा शैली का विधिवत अध्ययन करने के लिए इन्हें कांगड़ा कलम के अन्तिम चित्रकार श्री गुलाबूराम का शिष्यत्व ग्रहण करना पड़ा। श्री गुलाबूराम के सानिध्य में इन्होंने कई रेखा-चित्रों में रंग भरने की पारम्परिक कला को सीखा। कांगड़ा कलम के रंगों की जानकारी हासिल की। श्री टॉंक अपने गुरु गुलाबूराम जी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं जिन्होंने उन्हें कांगड़ा कलम की बारीकियों का ज्ञान दिया।

पहाड़ी चित्रकला के चित्रों का अध्ययन व अवलोकन करने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि ओ० पी० टॉंक के पूर्ववर्ती और परवर्ती चित्रकारों ने गुलेर, कांगड़ा, डाडासीबा, सुजानपुर टीहरा, चम्बा, मण्डी और नादौन आदि के राजा-महाराजाओं के चित्र अथवा उसकी अनुकृतियों का अधिक सृजन किया है। जहां तक कलाकार टॉंक का सम्बन्ध है इन्होंने अपने प्रारंभिक चित्रों में कांगड़ा के कटोचवंशीय महाराजा संसार चन्द, गुलेर नरेश जयसिंह, रघुनाथसिंह के चित्र तो बनाए हैं परन्तु वे पूर्ववर्ती चित्रों से इसलिए भिन्न हैं क्योंकि इन चित्रों में राजा-महाराजाओं की विलास क्रीड़ाएं ज्यादा मुखरित नहीं हैं। उनके वीरोचित अथवा नायकोचित गुणों ने ही टॉंक को अधिक प्रभावित किया है। इस संदर्भ में नूरपुर के सुप्रसिद्ध बजीररामसिंह पर निर्मित व्यक्तिचित्र के निर्माण में टॉंक ने लोक में प्रचलित रामसिंह पठानिया की लोकगाथा को मध्य-नज़र रखते हुए इस चित्र में उनके व्यक्तित्व में पाई जाने वाली विशिष्टताओं को चित्रांकित

करने में सफलता हासिल की है। कदाचित् इसीलिए इन चित्रों ने पर्यटकों कला प्रेमियों व कला समीक्षकों को आकर्षित किया है। इससे सिद्ध होता है कि ओ० पी० टाँक ने जो भी कलाकृति बनाई है उसकी आकृति और स्वभाव का सूक्ष्मता से अध्ययन किया है।

चित्रकार ओ० पी० टाँक के राधा-कृष्ण व गोपियों की रासलीलाओं के चित्र, महाभारत के कथानक पर आधारित चित्र—कृष्ण का अर्जुन को कर्म सम्बन्धी सन्देश देना, रामायण महाकाव्य के कथानक से जुड़े उत्तर काण्ड के चित्र, देहरे, देवी-देवताओं सम्बन्धी जितने भी चित्र उनके निजी संग्रहालय में विद्यमान हैं वे सभी प्राचीन चित्रों की अनुकृतियां हैं। प्राचीन चित्रों की अनुकृतियों में भी टाँक का मन अच्छा रमता है। इसका यह आशय कदापि नहीं कि टाँक ने मौलिक चित्रों का सृजन न किया हो। टाँक के मौलिक चित्रों में पहाड़ी गद्दण धान कूटती हुई, प्रेम व सौंदर्य सम्बन्धी चित्रों में—सुन्हीं-भूंकू, कूंजू-चंचलों, फूलमू-राँझू आदि कलाकृतियां चर्चित हुई हैं। हिमाचल की लोक गाथाओं, प्रणय सम्बन्धी लोक गीतों से चित्रकार ओ० पी० टाँक ने अपने लघु चित्रों के निर्माण के विषय चुने हैं। ओ० पी० टाँक ने हिमाचली भाषा में प्रचलित इन लोक गाथाओं व लोक गीतों का गहन अध्ययन किया है। लोकगीतों व लोकगाथाओं की भावसूक्ष्मता इनके बनाए चित्रों में सहज ही मुखर हुई है। ये वे चित्र हैं जिनसे ओ० पी० टाँक की कल्पनाशीलता व विलक्षण प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। इन प्रणय-गाथाओं व प्रेम-गीतों पर आधारित चित्रों में टाँक की सौन्दर्यानुभूति का सहज दर्शन हुआ है।

इन कलाकृतियों के विक्रय से इन्हें यशार्जन के साथ-साथ आर्थिक तौर पर भी अच्छा लाभ मिला है। श्री टाँक का कहना है कि इनकी पहली कृति 40/—रुपये में बिकी थी और अब उनकी कई कलाकृतियों की कीमत 10,000/—रुपये तक भी आंकी गई है। चित्रकार टाँक अपने चित्रों को बेचने के हक में नहीं हैं परन्तु चित्रों के निर्माण के लिए जब शुद्ध सोना खरीदना पड़ा है तो इन्होंने अपने चित्र बेचे हैं।

पहाड़ी गद्दणों पर बनाए चित्र को इन्होंने 'पहली कोशिश' कहा था जो सन् 1962 की रचना थी। पौराणिक कथाओं, धार्मिक प्रकरणों, लोक संस्कारों, लोकोत्सवों व बारहमाह पर आधारित चित्रों की एक लम्बी सूची टाँक के चित्रों की हो चुकी है। ओ० पी० टाँक ने पारंपरिक कांगड़ा चित्रशैली की विशेषताओं—रेखाओं की बनावट, रंगों की चमक-दमक, नोकदार लम्बी नाकों, गोलमटोल भरी पूरी ठुड्डियों और नायिकाओं के उभरे हुए उरोजों को अपनी कला और चित्रों में बड़ी कुशलता के साथ उभारा है। हिमाचल की वनस्पतियों, पहाड़ों-नदियों, पशु-पक्षियों, पहाड़ी झरनों व यहां की जनजातियों को चित्रों का विषय बनाने में अधिमान दिया है। सूक्ष्म से सूक्ष्म मानवीय भावनाओं और भाव-दशाओं की अभिव्यंजना इनके चित्रों में सहज प्राप्य है। भाव प्रवणता और कल्पनाशीलता के मणिकाँचन संयोग से टाँक ने अपने चित्रों को जीवन्तता प्रदान की है। इनके समकालीन पहाड़ी चित्रकारों में ओम सुजानपुरी, चन्दू लाल रैणा, अमीचन्द धीमान, विजयशर्मा चंबियाल, प्रीतम जदरांगल व जोगिन्द्र सिंह प्रमुख हैं। टाँक की शिष्य परम्परा में विवेक और कुमारी प्रतिभा ही ऐसे चित्रकार हैं जो प्रतिभा सम्पन्न हैं और भविष्य में श्रेष्ठ चित्रकार साबित हो सकते हैं। ये दोनों युवा चित्रकार टाँक के निर्देशन में कांगड़ा चित्रशैली के रंग-विन्यास व चित्र निर्माण के कार्य में अध्ययरत हैं।

कला को ही ओ० पी० टाँक ने अपनी पूजा और इष्ट माना है। इनमें देर रात तक एकान्त क्षणों में काम करने की अथक लग्न और हिम्मत है।

कांगड़ा शैली की चित्रण व रंग-प्रक्रिया में टॉंक अपने हाथ का बनाया कागज ही इस्तेमाल करते हैं। पुरानी बहियां और पुरानी पांडुलिपियां इनके निजी संग्रहालय में मौजूद हैं। स्यालकोटी कागज से मिलता-जुलता है इनका अपना बनाया हुआ कागज। यह कागज लुगदी की पर्तें जमा-जमा कर तैयार किया जाता है। राजस्थान के सांगानीर क्षेत्र के पास रहने वाले लोगों में रहकर इन्होंने इस कागज को बनाने की तकनीक सीखी है।

कागज़ के अनुरूप ही अपने रंग बनाने में श्री टॉंक निपुण हैं। कई रंगों के पत्थर इन्होंने डिब्बों में संभाल कर रखे हुए हैं। इन्हें समय-समय पर कला प्रेमियों व कला पारखियों को दिखलाकर कलाकार को संतोष मिलता है। ओ० पी० टॉंक कुल 14 रंगों का इस्तेमाल चित्र-निर्माण में करते हैं। इन रंगों में 5 जहरीले रंग हैं जो चित्र को कीड़ा नहीं लगने देते। पाँच जहरी रंग हैं—शंगरफ़, सिन्दूर, नीला थोथा, नील और हड़ताल। ओ० पी० टॉंक कांगड़ा चित्र-शैली के तेज और चमकदार रंगों का अधिकतर प्रयोग करते हैं जिससे वे अपने समय के चित्रकारों से अपनी अलग पहचान बनाए हुए हैं। गहरे रंगों से बने चित्र इनकी अलग पहचान बनाते हैं।

अब तक श्री टॉंक प्रदेश और देशभर में 20 एकल प्रदर्शनियां लगा चुके हैं। व्यवसाय से कला अध्यापक हैं और धर्मशाला के स्थानीय बुनियादी प्रशिक्षण केन्द्र में कार्यरत हैं। इस वर्ष इन्हें अध्यापक दिवस पर राज्य पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है। श्री टॉंक के जीवन की अब बस एक ही साध है कि 1995 ई० में सेवा निवृत्त होने के पश्चात् अपने बनाए हुए 1000 चित्रों की धर्मशाला में ही कला दीर्घा स्थापित करनी है। निरन्तर अभ्यास और साधना को ही श्री टॉंक कला का मुख्य प्रयोजन और हेतु मानते हैं। वे यह भी मानते हैं कि आज खुशामद का जमाना है, परिश्रम की कद्र नहीं, कला की पहचान व परख भी नहीं। इनका कहना है कि भारत की माटी से इन्हें बेहद प्यार है हिमाचल प्रदेश का प्राकृतिक सौन्दर्य इनकी कला का प्राण है। कुल्लू, चम्बा, लाहौल, किन्नौर और कांगड़ा की घाटियां कला और जीवन के स्पंदन हैं।

[हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, धर्मशाला]

हमीरहठ चित्र-सीरीज़ कथा

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि शत्रु के ध्वज देखकर हमीर की रानियों को शत्रु सेना के आने का भ्रम हुआ और उन्होंने इसी भ्रम में आत्म बलिदान कर दिया।

हमीर अपने सैनिकों के साथ जितने में महल तक पहुंच सका, तब तक सारी रानियां अग्नि को समर्पित हो चुकी थीं। यह दारुण दृश्य देखकर हमीर का हृदय टूट गया। एक ओर विजय का उल्लास और दूसरी ओर यह अप्रत्याशित शोक। इस कठिन घड़ी में हमीर ने अपने पुत्र को राजगद्दी पर आसीन किया और अपना शीश काटकर रूद्र को समर्पित करके स्वयं स्वर्ग सिधार गया।

समाप्त।

लक्ष्मण ताल (बद्रीनाथ के निकट) पारदर्शी : सुरेश शर्मा

निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश, त्रिशूल, शिमला-१७१००३ द्वारा प्रकाशित तथा शांति मुद्रणालय, गली नं. ११, विश्वासनगर दिल्ली-३२ द्वारा मुद्रित।